विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्वरूपी अस्तित्व जानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सह-अस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए.नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'' जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

   उपासना :- देवी देवताओं के संदर्भ में।

   कर्म :- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)।

   मनु धर्म शास्त्र में :- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।

   कर्म काण्डों में :- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्म काण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है ? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

   समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान तथा परम्परा के अनुसार- ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोध गम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रुप में स्पष्ट हुआ।

बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।
सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा विचार इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 घण्टे से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरुप संपूर्ण अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्गमय ''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र के रुप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़ चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रुप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई-जीवन रुप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

और

- प्राणपद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद

हर मानव सुखी होना चाहता है सुखी होने के लिए समाधान आवश्यक है। समाधान के लिए समझदारी आवश्यक है। समझदारी का मूल स्वरूप सहअस्तित्व दर्शनज्ञान, जीवन ज्ञान ही होना पाया जाता है । इसे लोकव्यापीकरण करने का आशा इस प्रस्तुति में समाया हुआ है ।

हर मानव अपनी पहचान प्रस्तुत करना चाहता ही है । हर मानव की पहचान समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व रूप में ही पहचानना बनता है और पहचान कराना भी बनता है। इसी आधार पर पूरे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद को समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रूपी मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है । मेरा विश्वास है हर मानव ऐसे ही अध्ययन का स्वागत करेगा ।

यह पुस्तिका सर्वमानव शुभ के अर्थ में सम्प्रेषित है। सर्वशुभ के अर्थ में सहअस्तित्व स्वयं निरन्तर प्रभावशील है। सहअस्तित्व के वैभव में ही सम्पूर्ण मानव का शुभ समाया हुआ है। इस तथ्य का अध्ययन कराना उद्देश्य रहा है । हम स्वयं अध्ययन किये हैं । अतएव आपके सौभाग्यशाली वर्तमान के रूप में अनुभव करने के लिए सहायक होगा, ऐसा हमारा निश्चय है।

यह प्रबंध मानव को समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य को भागीदारी रूप में प्रमाणित करने के लिए प्रेरक है । यह सार्थक हो, सर्वसुलभ हो, मानव कुल अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सदा-सदा प्रमाणित होता रहे। यही कामना है ।

ए. नागराज
प्रणेता-मध्यस्थदर्शन
(सह-अस्तित्ववाद)

अनुक्रमणिका

इन सभी मुद्दों पर सार्थकतापूर्ण निश्चयन को जनचर्चा के सूत्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए इस ग्रन्थ का उद्घाटन हुआ है । इसमें सर्वशुभ का सारभूत अर्थ समाहित है ।

मानव परम्परा में राज्य, धर्म, अर्थ और शिक्षा-संस्कार सम्बन्धी सार्वभौम निष्कर्षों को पाने का प्रयास सदा ही रहा है ।

इसकी असफलता का एकमात्र कारण मानव को एक इकाई के रूप में देखने, समझने, अध्ययन क्रम में सजाने, व्यवहार, व्यवस्थागत कार्य-कलापों को साकार करने की दिशा में प्रयास नगण्य रहा है । हर समुदाय ने अपनी-अपनी संस्कृति, सभ्यताओं को मान्यताओं के आधार पर स्थापित कर लिया । इसीलिए सभी समुदायों की सांस्कृतिक अस्मिता समानान्तर रूप में प्रवृत्त हुई फलस्वरुप बारंबार टकराव की मुद्राएँ-घटनाएँ देखने को मिलती रही। जबकि अधिकांश मानव वाद-विवाद, झंझटों को नहीं चाहते हैं । परिस्थितियाँ इन तमाम घटनाओं के लिए बाध्य करती रहीं । कोई एक परम्परा अपनाया हुआ राज्य और धर्म अस्मिताएँ, टकराव की स्थिति निर्मित करती रहीं । उसी के साथ-साथ अन्य समुदायों का उलझना एक बाध्यता बनती रही है । इसी उलझन से सामरिक अस्मिता सर्वाधिक रूप में पुष्ट हुई । इसी के पक्ष में कोई भयभीत होकर, कोई प्रलोभित होकर इस घटना प्रवाह में भागीदार बनने के लिए इच्छा रखते रहे, और भागीदार होते भी रहे। इसका साक्ष्य यही है कि सामरिक कार्यकलाप में भागीदारी करने के लिए बहुत सारी प्रतिभाएँ उम्मीदवार होती ही हैं तथा भागीदारी निर्वाह करती ही हैं यह सर्वजन विदित तथ्य है । जनचर्चा में भी सामरिक वार्ताओं को प्रदर्शन-प्रकाशन के माध्यम से रोमांचक विधि से प्रस्तुत किया जाता है । ताकि पीढ़ी दर पीढ़ी सामरिक प्रवृत्ति स्वीकृत होती

रहे, पुष्टित होती रहे । उल्लेखनीय है कि अधिकांश मानव युद्ध न चाहते हुए भी युद्ध वार्ता-चर्चा में उत्साहित होकर भाग लेते हैं । मानव में यह एक अन्तर्विरोधी विन्यास है । इसी प्रकार अन्तर्विरोधी मुद्दे के रूप में शोषण को कोई नहीं चाहता है, फिर भी अधिकांश जनमानस व्यापार चर्चा व लाभवादी विधाओं से उत्साहित होते हुए देखने को मिलते हैं ।

इस बात से हर व्यक्ति सहमत होता है कि वह मानव ही है । किन्तु अपना परिचय वह किसी वर्ग या समुदायिक पहचान के साथ ही देता है । यह भी अन्तर्विरोध का जीता जागता उदाहरण है । आम जन-मानसिकता के गति, कार्य वार्तालाप के क्रम में यह भी देखने को मिलता है कि सर्व शुभ होने का कार्य राज्य, धर्म और शिक्षा में होना चाहिए । जबकि इन तीनों विधाओं में विशेष और सामान्य का प्रभेद बना ही है । (विशेष और सामान्य का तात्पर्य विद्वान-मूर्ख, ज्ञानी-अज्ञानी, बली-दुर्बली, धनी-निर्धनी के रूप में मान्यता है) । यह विशेषकर समुदायगत अन्तर्विरोध के रूप में देखने को मिलता है । जनचर्चा में यह भी सुनने को आता है कि शिक्षा-संस्कार आदि चारों परम्परा (शिक्षा संस्कार, राज्य, धर्म, व्यापार व्यवस्था) ठीक है और इस बात को स्वीकारा जाता है। परम्परा सहज विधि से हर मानव संतान किसी न किसी परिवार

> *अधिकांश मानव युद्ध न चाहते हुए भी युद्ध वार्ता-चर्चा में उत्साहित होकर भाग लेते हैं । मानव में यह एक अन्तर्विरोधी विन्यास है। इसी प्रकार अन्तर्विरोधी मुद्दे के रूप में शोषण को कोई नहीं चाहता है, फिर भी अधिकांश जनमानस व्यापार चर्चा व लाभवादी विधाओं से उत्साहित होते हुए देखने को मिलते हैं ।*

की विषमता के संयोग से विरोधों का प्रदर्शन, असंख्य हिंसाओं के रूप में साक्षित है । प्राकृतिक भय, पशुभय, मानव में निहित अमानवीयता (हिंसा, शोषण, द्रोह, विद्रोह, प्रवृत्ति) का भय अर्थात अथ से इति तक भय के विभिन्न स्वरूपों को परिलक्षित किया गया है और हर व्यक्ति इन्हे परिलक्षित कर सकता है ।

भिन्न-भिन्न मानव कुल और परम्पराओं का विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में आरंभ होना एक नियति सहज विधि है । इसी आधार पर ही भिन्न-भिन्न मानसिकता का होना स्वयं साक्षित है । इसे हर व्यक्ति अपनी संतुष्टि के लिए अथवा निश्चयन के लिए सर्वेक्षित कर सकता है । इसी मानसिकता के क्रम में, भय पीड़ित अथवा प्रताड़ित मानसिकता ही सर्वप्रथम व्यक्त होने, करने, कराने का अवसर और आवश्यकता समीचीन रही है। इसका साक्ष्य आज भी हर भाषा में भय संबंधी कथन, कथा, परिकथा, तथा चर्चाओं के रूप में प्रकाशित होता हुआ दिखाई पड़ता है । साथ ही साथ अभयता की अपेक्षा हर पीढ़ी में रहती आयी है और हर पीढ़ी अभयता से परिपूर्ण होने में असमर्थ रहते ही आयी है । आदि मानव में एवं अत्याधुनिक मानव में इतना ही परिवर्तन दिखाई पड़ता है कि प्राकृतिक भय और पशुभय (क्रूर जानवरों का भय) का प्रभाव कम हो गया। जैसे जैसे ये भय कम हुए मानव में निहित

आदि मानव में एवं अत्याधुनिक मानव में इतना ही परिवर्तन दिखाई पड़ता है कि प्राकृतिक भय और पशुभय (क्रूर जानवरों का भय) का प्रभाव कम हो गया। जैसे जैसे ये भय कम हुए मानव में निहित अमानवीयता का भय पराकाष्ठा की ओर होना प्रकाशित हुआ। यहाँ उल्लेखनीय मुद्दा यही है कि युद्ध जैसे परम दुष्ट कृत्यों को विकास का आधार मान लेना, मनवा देना, अत्याधुनिक युग का दबाव और पीड़ा है।

अमानवीयता का भय पराकाष्ठा की ओर होना प्रकाशित हुआ। यहाँ उल्लेखनीय मुद्दा यही है कि युद्ध जैसे परम दुष्ट कृत्यों को विकास का आधार मान लेना, मनवा देना, अत्याधुनिक युग का दबाव और पीड़ा है।

क्रूरता, हिंसा और युद्ध मानसिकता :-

आदि मानव में भी घटनाओं के साथ तदाकार होना, कम से कम अनुकरण में प्रवर्तित होना, कल्पनाशीलता एवं कर्म स्वतंत्रता के योगफल की महिमा रही है। मानव परंपरा के आरंभिक काल में सर्वाधिक भौगोलिक परिस्थितियाँ इस धरती पर प्रकट होने एवं वनस्पति मानव जाति के विकास के अनुकुल रहना आज भी जनमानस में स्वीकृत होता है क्योंकि शनैः शनैः वन का शोषण व क्षरण मानव के हाथो होना आँकलित होता है। ऐसी वनस्थली में आदि मानव के सम्मुख वन, वन्य-पशु, प्राणी, हवा, जल, सूर्य प्रकाश पृथ्वी ही प्रथम नैसर्गिकता के रूप में समीचीन रहते रहे हैं। इन सभी ने मानव पर प्रभाव डाला। इनमें से हवा, जल, प्रकाश धरती की स्वीकृति और जंगल, वन्य प्राणी तथा उनसे संपन्न होने वाले क्रिया-कलाप की अस्वीकृति रही, फलस्वरूप वन्य प्राणियों के साथ हिंसक रवैया और वनस्थली को मैदान बनाने का रवैया मानव ने अपनाया। इसी क्रम में परिवार और ग्राम कबीलों में परिस्थितिजन्य मान्यता, रूढ़ियों को अपनी-अपनी भाषा विधि से अग्रिम पीढ़ियों में संप्रेषित करने का कार्य भी होता ही रहा। आदिकाल में भय के अलावा भाषा में वर्णन करने की कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके अलावा कोई चीज रही है - वह है क्रूर वन्य

को मिलती हैं। ये सब जन चर्चा का आधार बिंदु है। चौथी गद्दी, शिक्षा गद्दी के रूप में पहचानी जाती है । आज तक शिक्षा में उन्नयन (विकास) के नाम से व्यवसायिक शिक्षा के रूप में ही शिक्षा का ढाँचा-खाँचा बना हुआ है । शिक्षा रूपी व्यवसाय भी व्यापार के रूप में ही अथवा व्यापार के सदृश ही सुविधा-संग्रह की ओर प्रवर्तित देखने को मिल रहा है । इन सब को देखकर कृषि में निष्ठा रखने वाले, परिश्रम में विश्वास रखने वालों में सुविधा-संग्रह की ओर प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है । क्योंकि चारों गद्दियों में आसीन उनके साथी-सहयोगियों का जलवा और रूतबा ही इनके लिए आदर्श रहा है। सर्वाधिक लोग आज भी कृषक और श्रमजीवी हैं तथा यही लोग, लोक सामान्य और आम जनता के नाम से जाने जाते हैं।

तमाम अपराधिक घटनाएँ और बर्बरताएँ जनचर्चा के माध्यम से सुनने में आती हैं। उल्लेखनीय है कि उक्त सभी बातों को जनमानस सामान्य कार्यकलाप के रूप में स्वीकार कर रहा है । किन्तु अपराध, लूट-खसोट, छीना-झपटी जैसे कार्यों को स्वयं के साथ घटित होते हुए स्वीकार नहीं पाता है ।

जनचर्चा में मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग का अनुसरण करने वाले सभी लोग समाहित रहते हैं। आज की स्थिति में जनचर्चा के सर्वाधिक मुद्दे सुविधा, संग्रह, भोग पर आधारित होतें हैं। संपूर्ण साहित्य, वांडमय, परिकथा, कथाओं व संचार माध्यम का वाचन-श्रवण भी इन्ही अर्थों में सुनने में आता है। वर्तमान के आदर्शों के आधार पर ही जनचर्चा होना देखा गया है। इसी के साथ तमाम अपराधिक घटनाएँ और बर्बरताएँ जनचर्चा के माध्यम से सुनने में आती हैं।

उल्लेखनीय है कि उक्त सभी बातों को जनमानस सामान्य कार्यकलाप के रूप में स्वीकार कर रहा है। किन्तु अपराध, लूट-खसोट, छीना-झपटी जैसे कार्यों को स्वयं के साथ घटित होते हुए स्वीकार नहीं पाता है। घटित हुई घटना दोनों प्रकार से जनमानस चर्चा की वस्तु बनाती है। जैसे किसी देश-देश के साथ युद्ध होना या युद्ध के लिए प्रस्तुत होने वाले वक्तव्य, युद्ध का अंतिम परिणाम जिसमें किसी की हार जीत होती है, को कुछ लोग उचित ठहराते हैं, कुछ लोग अनुचित ठहराते हैं। उचित अनुचित ठहरातें समय यही लोकचर्चा में रहता है कि बड़ा अत्याचार किया था इसीलिए राज्य का पतन होना जरूरी था । दूसरे तरीके से कभी-कभी यह भी समीक्षा सुनने में आती है कि जो पराजित हुए वे मूर्ख थे इसीलिए हार गये । इसी प्रकार जीते हुए देश के संबंध में भी में उचित-अनुचित के रूप में जनमानस चर्चा करते ही हैं।

घटनाक्रम में किसी परिवार के साथ भी उचित अनुचित के रूप में इसी प्रकार गाँव, मुहल्ला में भी जनचर्चा होते हुए देखने को मिलती है । यह तो सर्वविदित है, कि सम्पूर्ण प्रचार तंत्र, अपराध और श्रृंगारिकता के अतिरिक्त और कोई ज्ञान वर्धन करा नहीं पा रहे है । शिक्षा के नाम से जो कुछ भी प्रचार करते हैं, वे सब न्यून प्रभावी रहते हैं, अपराधिक और श्रृंगारिक प्रभाव के सामने नगण्य हो जाते हैं।

जनचर्चा शिक्षा सहज मानसिकता, समुदाय परंपरा सहज मानसिकता और प्रचार माध्यमों की मानसिकताएँ प्रधान रूप में हर मानव पर प्रतिबिम्बित होती ही हैं। हर वर्तमान में इसका निरीक्षण, परीक्षण किया जा सकता है। मानवकुल अनेक समुदायों के रूप में दृष्टव्य है। समुदायों के बनने के मूल कारणों की ओर पहले ध्यान

मिलती है। यही वृद्धावस्था में भी किसी अंश में जीवित पायी जाती है। ऐसी सहयोगितावादी प्रवृत्ति का आशिंक रूप ही देश कालीय विधि से प्रायोजित होता हुआ देखने को मिलता है। ऐसी उपकार विधाओं का विविध राज्य और धर्म परम्परा में होना, प्रवृत्त रहना पाया जाता है। इसी प्रकार एक समुदाय, दूसरे समुदाय; एक परिवार, दूसरे परिवार; एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिये उपकारी होने की बातें चर्चाओं में सुनने को मिलती हैं। कुछ घटनाएं भी देखने को मिलती है। इसका परिणाम किसी का किसी के साथ किया हुआ उपकार किसी दूसरे के लिए संकट के रूप में भी देखने को मिला। जैसे एक देश दूसरे देश के लिए सामरिक तंत्र वस्तुओं से उपकार करने की स्थिति में अन्य देश संकट की गुहार मचाता है। एक धर्म कहलाने वाले परम्पराओं द्वारा अपनी-अपनी जाति को बढ़ावा देने की कार्यवाहियों और मानसिकताओं से अपनी प्रसार प्रवृत्ति को अपनाने की स्थिति में दूसरा समुदाय संकटग्रस्त होता है। एक समुदाय परिवार, व्यक्ति अथवा देश शोषण पूर्वक सर्वाधिक धनार्जन कर लेता है, उस स्थिति में वे सब गुहार मचाते हैं जो असफल रहते हैं। यही आज की बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक गंभीर चर्चाओं की वस्तु रही है। इस प्रकार वर्तमान में जनचर्चाओं का मुद्दा अपराध, श्रृंगारिकता, गलती,

> ***सभी राज्य संविधान (लिखित-अलिखित) गलती, अपराध और युद्ध को रोकने की मानसिकता का ताना बाना है। इसके विपरीत जनचर्चाओं में इन्ही मुद्दों का सर्वाधिक प्रभाव होना पाया जाता है। जनचर्चा प्रवृत्ति के लिए अभी तक जितनी भी किताबें छपी हैं उनमें सर्वाधिक भाग इन्हीं प्रेरणाओं से अनुप्राणित होना पाया जाता है।***

राज्य, धर्म, अर्थ, संबंधी जटिलताएँ ही हैं।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सभी राज्य संविधान (लिखित-अलिखित) गलती, अपराध और युद्ध को रोकने की मानसिकता का ताना बाना है। इसके विपरीत जनचर्चाओं में इन्ही मुद्दों का सर्वाधिक प्रभाव होना पाया जाता है। जनचर्चा प्रवृत्ति के लिए अभी तक जितनी भी किताबें छपी हैं उनमें सर्वाधिक भाग इन्हीं प्रेरणाओं से अनुप्राणित होना पाया जाता है। इसी के साथ श्रृंगारिकता, भोग, बहुभोग, अतिभोग प्रवृत्तियाँ इनमें समायी रहती हैं। इसी प्रकार हमें देखने में पता लगता है कि जनसंघर्ष के लिए गलती, अपराध, युद्ध, शोषण, भोगवादी कार्य-कलाप ही मुख्य कारण है। मानव संघर्ष से ग्रस्त होने की स्थिति में राहत पाने के लिए श्रृंगारिकता, भोग, अतिभोगवादी मानसिकता का प्रयोग करता हुआ देखा जा रहा है।

प्रचलित रूढ़ी, मान्यता, कल्पना, आकांक्षा जो ऊपर स्पष्ट किये गये हैं, उनके आधार पर जनचर्चा और जनाकांक्षा का निर्धारण इन्हीं के पक्ष विपक्ष में होना बनता है। इन सभी चर्चाओं का सार यही है, जीना है, सुखी होना है, भय से मुक्त होना है, विपन्नता और प्रताड़नाओं से मुक्त होना है साथ ही साथ समृद्ध होना है। यही सब मानसिकता कल्पना

> ***मानसिकता कल्पना के रूप में पहचान आने वाली आकांक्षाओं का हर मानव में परस्पर वार्तालाप, विचारणा, परिचर्चा, संवाद-वादों द्वारा किसी न किसी मान्यता के रूप में प्रतिबद्ध होना, उसी के आधार पर प्रवर्तनशील होना देखा गया है। वाद प्रवृत्ति हर व्यक्ति में काफी लंबी चौड़ी अर्थात विशाल होती है।***

संभव नहीं हो पाया। जबकि भौतिकवादी प्रबंध के रचयिता और पंडितों को पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित किया गया। यह भी हमारी देखी हुई घटनाएँ हैं। इस विधि से साम्यवादी विचार का अन्त सामान्य जनमानस के अनुसार भोगवाद में परिणत हो गया, और जहाँ तक शासन प्रशासन के तौर तरीकेका मुद्दा है, अभी तक पूँजीवादी देश जितना भ्रमित रहा है उतना ही साम्यवादी देश भी उलझा रहा है, भ्रमित रहा है। अभी की स्थिति में पूँजीवादी देशों में सामरिक तंत्र और मात्रा दोनों बढ़ा हुआ देखने को मिलता है। इसी के साथ-साथ साम्यवादी देश कहलाने वाले इस दशक के अन्त तक जो भी बचे हुए हैं, वे भी अपने सामरिक तंत्र और मात्रा में पर्याप्त समर्थ हैं; ऐसा बता रहे हैं।

जो साम्यवादी देश नहीं हैं, धर्म निरपेक्ष तंत्रवादी और लोककल्याण तंत्रवादी, जातिवादी, सम्प्रदायवादी भेदों में गण्य हैं। उल्लेखनीय तथ्य यही है इन किसी भी वाद परस्त संविधानों में सार्वभौम आचार संहिता का सूत्र और व्याख्या देखने को नहीं मिली। इसके अनंतर कई राष्ट्रों के गठन से गठित संस्थायें भी बनी हैं। उन में से एक गुट निरपेक्ष है, एक कामनवेल्थ तथा एक राष्ट्र संघ है। इसी के साथ और भी कई नामों से कुछ कुछ देश मिलकर संगठनों को बनाए रखे हैं। इन सभी संगठनो में परस्पर मानवीयता पूर्ण व्यवस्था सहज आचार संहिता का सूत्र और व्याख्या नहीं हो पायी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की अनुशंसा के अनुसार शिक्षा में सार्वभौमता को पाने की विधा में कई उप-संस्थाओं को शामिल किये हैं। ऐसी चार-छः संस्थाएँ विभिन्न देशों में काम कर रही हैं। अभी तक इनसे कोई सार्वभौम मानसिकता सहज शिक्षा-प्रणाली-नीति और कार्य

योजना स्थापित नहीं हो पायी। ये सभी संस्थाएँ जिनके पास अधिक पैसा है, पैसा बाँट देना ही अपना कार्यक्रम मान लिए हैं। इसी क्रम में अधिकांश देश, सामान्य लोगों के पास पैसे पहुंचने पर, सब विकसित हो जायेंगे ऐसा सोचा करते हैं, कार्य भी वैसा करते है। यह भी इस दशक में देखने को मिल रहा है कि सर्वाधिक पैसा जिसके पास है वही ज्यादा से ज्यादा शोषण करता है। जहाँ ज्यादा शोषण होता है - वहीं ज्यादा पैसा एकत्रित होता है यह देखा गया है। इतना ही नहीं व्यापार और शोषण में जो पारंगत हैं ऐसे लोग बड़े-बड़े कोषालयों की कार्यशैली में धूल झोंककर स्वयं लाभ पैदा करते हुए देखे गये हैं।

संविधानों में तीन मुद्दे प्रधान है। गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना। यह प्रायः सभी राजशासन की गति-प्रवृत्ति और दिशा है। पर्याप्त जन सुविधा, व्यक्ति विकास, समानता का अधिकांश लोग आश्वासन देते हुए जनमत प्राप्त करते हैं, गद्दी पर बैठ जाते हैं।

जहाँ तक गणतंत्र-प्रजातंत्र-समाजतंत्र किसी भी नाम से जनमत के आधार पर जो व्यक्ति गद्दी में बैठ जाता है उन सब का कमोवेशी कार्यकलाप का तरीका मूलतः एक सा होना बनता है अर्थात् विशेष हो जाता है। सभी राज्य शासन-प्रशासन के लिये संविधान बना ही रहता है। ऐसे सभी संविधानों में तीन मुद्दे प्रधान है। गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना। यह प्रायः सभी राजशासन की गति-प्रवृत्ति और दिशा है। पर्याप्त जन सुविधा, व्यक्ति विकास, समानता का अधिकांश लोग आश्वासन देते हुए जनमत प्राप्त करते हैं, गद्दी पर

आवश्यकता रही ।

सर्वाधिक देश जिसकी भागीदारी को स्वीकारें है वह राष्ट्रसंघ अभी तक किसी सार्वभौम संविधान, सार्वभौम शिक्षा, सार्वभौम जनमानसिकता को पाने की विधा ढूढ़ने की कोशिश में हैं। ऐसा उन संस्थाओं के उद्‌गार से पता लगता है। युद्ध विभषिका को रोकने के पक्ष में अपनी सम्मति को व्यक्त किया रहता है। इन मनोनीतियों के अनुसार इस संस्था में सर्वोच्च प्रतिभाएँ काम करते रहते हैं। राष्ट्रसंघ के मानसिकता के अनुसार भी विकास और बेहतरीन जिन्दगी की सम्मति अभी तक संग्रह-सुविधा युद्ध सामरिक तंत्र में अग्रगामियता, व्यापार में सर्वाधिक फैला हुआ देशो को विकसित मानने के पक्ष में दिखाई पड़ती है । जबकि संग्रह-सुविधा अभी तक जिस चोटी में पहुंच चुकी है उतना संग्रह-सुविधा सबको मिलने की विधि इस धरती पर नहीं हो सकती। क्योंकि संग्रह-सुविधा से लैस व्यक्ति हर परिवार संस्था को मिलने का प्रावधान नहीं है। इसके लिए धरती छोटी दिखाई पड़ती है। थोड़े लोग इस धरती पर रहने से सबको सुविधा-संग्रह मिल जायेगा विभिन्न संस्थाओं ने ऐसा भी सोचा । इसी आधार पर विभिन्न राज्य संस्था, समाजसेवी संस्था, संयुक्त राष्ट्र संघ और भी जितने छोटे बड़े संगठन है वे सब इस बात को दोहराते हैं कि जनसंख्या नियंत्रण होना चाहिये ।

राष्ट्रसंघ के मानसिकता के अनुसार भी विकास और बेहतरीन जिन्दगी की सम्मति अभी तक संग्रह-सुविधा युद्ध सामरिक तंत्र में अग्रगामियता, व्यापार में सर्वाधिक फैला हुआ देशो को विकसित मानने के पक्ष में दिखाई पड़ती है । जबकि संग्रह-सुविधा अभी तक जिस चोटी में पहुंच चुकी है उतना संग्रह-सुविधा सबको मिलने की विधि इस धरती पर नहीं हो सकती ।

यह भी एक नजीर इसी दशक में देखने को मिला कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के आवाहन के अनुसार एक पृथ्वी सम्मेलन किया गया जिसमें ऊपर कहे गये ढाँचा-खाँचा में आने वाले देश अपने को विकसित एवं अन्य देशो को विकासशील अथवा अविकसित घोषित किये । इस पर राष्ट्रसंघ अपनी सहमति व्यक्त किया । साथ ही यह भी बताए कि जो अपने को विकसित देश घोषित किये हैं उनके मार्गदर्शन के अनुसार अन्य देश चलना चाहिये क्योंकि उक्त दोनो कोटि के देश विकसित होना जरूरी है । विकास का दावा जितने देश भी किये है उसमें अधिकांश भाग अत्याधुनिक सामरिक तंत्र और यंत्र ही है । इसका दूसरा भाग संग्रह-सुविधा, भोग, अतिभोग बहुभोग ही है । अथवा इसी ओर है। संग्रह, सुविधा भोग के आधार पर जिन्हें विकसित देश बता रहे है उसकी सार्वभौमता के लिए हर व्यक्ति-परिवार उतना सुविधा-संग्रह और खर्च करने की आवश्यकता इच्छा करता ही है जबकि सबको सुविधा संग्रह समान मात्रा से मिल नहीं सकती । इस विधि से विकास तंत्रणा कहाँ पहुँचा ? इसका उत्तर कौन देगा ? कौन जिम्मेदार है ? राष्ट्रसंघ जिम्मेदार है ? या विकसित देश जिम्मेदार है ? यही दो तबके अपने को सर्वाधिक-अधिकाधिक विकसित होने का सत्यापन प्रस्तुत किये है । जबकि विकास का मापदंड संग्रह-सुविधा के

संग्रह, सुविधा भोग के आधार पर जिन्हे विकसित देश बता रहे है उसकी सार्वभौमता के लिए हर व्यक्ति-परिवार उतना सुविधा-संग्रह और खर्च करने की आवश्यकता इच्छा करता ही है जबकि सबको सुविधा संग्रह समान मात्रा से मिल नहीं सकती । इस विधि से विकास तंत्रणा कहाँ पहुँचा ? इसका उत्तर कौन देगा ? कौन जिम्मेदार है ?

मुद्रा (बहुमूल्य धातुएँ) उपयोगिताशील वस्तुओं का प्रतीक मुद्रा ही है। प्रतीक प्राप्ति नहीं होती दूसरे विधा से प्राप्तियाँ प्रतीक नहीं होती इस सूत्र से स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बहुमूल्य धातुओं के रूप में पहचाना गया है। यह केवल धन को धन से पाने की विधि से सम्मत होकर सामान्य मानव हर उपभोक्ता ऐसी प्रतीक मुद्रा प्रणाली से प्रताड़ित होने के लिये बाध्य हो चुका है। इसके निराकरण सहज जनचर्चा और जनमानसिकता की आवश्यकता है। सुदूर विगत से ही हम संघर्ष के लिये ही जनमानस को तैयार करने के क्रम में संघर्षात्मक जनवाद को अपनाते आये हैं। संघर्ष एक सर्वस्वीकृत वस्तु न होकर मजबूरी का ही प्रदर्शन है। जैसे युद्ध किसी के लिये वांछित घटना नहीं है फिर भी युद्ध की तैयारियाँ हर देश करता है। यह देश-देश के बीच मजबूरी की स्थिति है। हर व्यक्ति एक दूसरे के साथ व्यवहारिक संगीत को स्थापित करना चाहता है। शिक्षा-संस्कार (प्रचलित) कार्यक्रम में इसके लिए कोई निश्चित प्रावधान न होने के कारण हर व्यक्ति एक दूसरे से सशंकित मानसिकता को लिये हुए संघर्ष को अपनाने के लिए विवश होता जा रहा है। इसका जीता जागता साक्ष्य यही देखा जा रहा है पति-पत्नि दोनो अलग-अलग कोषालयों में खाता बनाए रखना चाहते है। इतना ही नहीं है घर में रखी हुई पति पत्नि की

सुदूर विगत से ही हम संघर्ष के लिये ही जनमानस को तैयार करने के क्रम में संघर्षात्मक जनवाद को अपनाते आये हैं। संघर्ष एक सर्वस्वीकृत वस्तु न होकर मजबूरी का ही प्रदर्शन है। जैसे युद्ध किसी के लिये वांछित घटना नहीं है फिर भी युद्ध की तैयारियाँ हर देश करता है। यह देश-देश के बीच मजबूरी की स्थिति है।

पेटियों में अलग-अलग ताला होना भी पाया जाता है। हर परिवार में घर के दरवाजे पर ताला लगाया ही जाता है। ताला लगाने का तात्पर्य मानव जाति के प्रति शंका-कुशंका ही है। हर व्यक्ति इस बात को स्वीकार कर चलता ही है कि चोर डाकू होते ही है। इसलिए ऐसा प्रबंध करके रखना ही है। कोषालयों को देखे वहाँ भी अभेद्य कक्ष बनाए जाते है - इसके बावजूद भी यह सब लूटे जाते हैं। ऐसी घटनाओं को बारम्बार सुना जाता है। इन सभी घटनाओं को याद दिलाने के मूल मे एक ही मकसद है - हम मानव को अभी व्यवस्था में जीना है। ऐसी समझदारी विकसित नहीं हुई और उचित प्रणालियों को अपनाना दूर ही है इसलिए जनवाद में व्यवस्था रूपी व्यवहार चर्चा को पहल करना परम आवश्यक है ही।

अतएव ''व्यवहारात्मक जनवाद क्यों'' इस मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है। इन विधाओं में इंगित दिशाओं की ओर ध्यानाकर्षण करना हमारा उद्देश्य है, समझना सफल बनाना आपका अनुग्रह है।

पक्षधर क्यों है ? मानव अपने आप में जितने भी सतह में व्यवस्थित है, उन किसी सतह में सत्य स्वीकृत होना पाया जाता है । इसको ऐसा कहना भी बनता है मानव सहज रूप में ही नियम, न्याय, व्यवस्था, सत्य, व्यापक, अनंत को नाम से या अर्थ से स्वीकार किया ही रहता है। हमारे अभी तक के सर्वेक्षण से यह पता लगा है, नाम से हर व्यक्ति स्वीकृत है। अर्थ से सम्पन्न होना प्रतीक्षित है ।

साहित्य कला क्रम में आनन्द रूपी रस को सम्प्रेषित करने के उद्‌देश्य से प्रयासोदय होने का उल्लेख है। अंततोगत्वा यह रहस्य में अन्त होकर रह गये क्योंकि आनन्द एक रहस्य ही रहा । इसमें आनन्दित होने वाला, आनन्द का स्रोत, संयोग विधियाँ मानव के समझदारी का अभी तक अध्ययन सुलभ नहीं हो पाया है । किसी वस्तु के अध्ययन सुलभ होने के उपरान्त ही इसकी अभिव्यक्ति-सम्प्रेषणा सहज होना सर्वविदित है। अतएव काल्पनिक आनन्द अभिनयात्मक प्रदर्शन के योगफल में क्रमागत विधि से श्रृंगारिकता ही सर्वाधिक अभिनयों के माध्यमों से भ्रमित मानव को प्रिय लगना स्वाभाविक है। इसी को एक मानव के लिए आवश्यकता, उपलब्धि के रूप में कल्पना करते हुए वीभत्स और रौद्र रस तक कल्पनाएँ दौड़ा ली । इसे चाव से लोग एकत्रित होकर देखते रहे अभी भी देखते है । जबकि काम, क्रोध, मद,

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य ये सब मानव के आवेश का विन्यास और प्रकाशन है। इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, प्रमाणिकता, व्यवस्था मूलक जनचर्चा कला साहित्य प्रकाशन, प्रदर्शन, शिक्षा-संस्कार व्यवस्था पर आधारित जनवाद की आवश्यकता है।

लोभ, मोह, मात्सर्य ये सब मानव के आवेश का विन्यास और प्रकाशन है। इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, प्रमाणिकता, व्यवस्था मूलक जनचर्चा कला साहित्य प्रकाशन, प्रदर्शन, शिक्षा-संस्कार व्यवस्था पर आधारित जनवाद की आवश्यकता है। दूसरे भाषा में मानव के साथ मानव की चर्चा का, वार्तालाप के निष्कर्ष का, संवादों का आधार होना एक आवश्यकता है। क्योंकि जिस विधि हम आदि काल से अभी तक गतित हुए है, उस जनचर्चा में भ्रमात्मक भाग ही सर्वाधिक है । प्रयोजनवादी यथार्थ का भाग न्यूनतम है। इसको हम भली प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। पूर्णतः प्रयोजनशील याथार्थ को रोजमर्रा की चर्चा में ला सकते हैं ।

डाका, डकैती, जानमारी, गबन, शोषण, जघन्य पाप कृत्यो में नाम कमाया हुआ व्यक्तियों और हर मूर्ख समझदार में, से, के लिए गणतंत्र प्रणाली में भागीदार होने का अवसर, गणतंत्र प्रणालियों को अपनाये हुए सर्वाधिक संविधानों में प्रावधानित है। इसकी शुभ कल्पना यही रही जो जीता-जागता हमने देखा है कि गाँव-मुहल्ला में जब कहीं भी कोई कुकृत्य, गलती होती है उसका उजागरण होता हुआ देखा गया है । उजागर साक्ष्यों के आधार पर स्थानीय बुजुर्ग पंच अथवा मुखिया नाम से जो व्यक्ति सम्बोधित होते रहे उनके द्वारा

मानव के साथ मानव की चर्चा का, वार्तालाप के निष्कर्ष का, संवादों का आधार होना एक आवश्यकता है । क्योंकि जिस विधि हम आदि काल से अभी तक गतित हुए है, उस जनचर्चा में भ्रमात्मक भाग ही सर्वाधिक है । प्रयोजनवादी यथार्थो का भाग न्यूनतम है। इसको हम भली प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। **पूर्णतः प्रयोजनशील यथार्थो को रोजमर्रा की चर्चा में ला सकते हैं ।**

जनमानस में बनी है । चर्चा में भागीदारी किया हुआ व्यक्ति स्वयं असंतुष्ट रहता है । परिणामत: संघर्ष के लिए तैयारियाँ हो जाती है । इस विधि से संघर्षात्मक जनवाद प्रचलित हुआ ।

तकनीकी विद्या भी संग्रह सुविधा के चक्कर में आकर बहुत सारी गलती और अपराध के लिए आधार बन चुकी है । शोषण विद्या तकनीकी के साथ जुड़ा ही है इसमें नैसर्गिक और मानव दोनो समाहित है, संकटग्रस्त हैं ।

इसमे से कुछ ऐसी तकनीकी है जो मानव का शोषण सर्वाधिक करता है । तकनीकी विधि से अनेक पुर्जों से एक यंत्र तैयार होता है ऐसा मान लिया गया है । उसी क्रम को मानव के शरीर के साथ भी ऐसा ही सोचना शुरू किया । इसी क्रम में हड्डी खराब होने पर हड्डी बदल देंगे - गुर्दा खराब होने पर गुर्दा बदल देंगे । इसी प्रकार हृदय, आँख, नाक, चमड़ा, रक्त के सम्बंध में भी सोचा गया । इसको क्रियान्वयन करने के क्रम में मानव अपने प्रयासों से किसी भी अंग अवयवों के हड्डी, मांस और स्नायुओं को बनाने में असमर्थ रहा । इन चीजों को बदला जा सकता है । यह तकनीकी कर्माभ्यास पूर्वक कुछ लोगो को करतलगत हुई । विगत दशक और इस दशक में बीती हुई पाँच वर्ष में अनेकानेक जनचर्चा पत्र पत्रिका की सूचना दूर दर्शन साक्षात्कारों के रूप में देखा गया सुना गया कि किसी का गुर्दे, किसी का आँख, किसी के कुछ और अंगो को कुशल शल्य चिकित्सक अपहरण कर लिया । इन खबरों को सुनने से जो प्रभाव पड़ा कि मूलत: शल्य चिकित्सा विधि शुभ के लिये ही आरंभ हुई है किन्तु वर्तमान में अशुभ का भी कारक बन चुकी है । यदि ऐसी घटनाओं में वृद्धि हो जाये तो कौन किसके पास बेहोशी में होकर आपरेशन कराना चाहेगा । बेहोशी के अनन्तर मानव के किसी भी

अंग अवयव को काँट-छाँट कर अलग कर सकते है । उसके बाद ऑपरेशन जिसका हुआ है वह चाहे बचे चाहे मरे । इन स्थितियों मे हम आ चुके है ।

इसी प्रकार इसके आगे दवाइयों का संसार है, जो अत्याधुनिक विधि से बनाई जातीं है । उनसे जितना लाभ होता है इससे अधिक परेशानी होने की सूचना, उन्हीं दवाई से चिकित्सा करने वाले स्वयं बताया करते है । ये सब होते हुए भी ऐसी अत्याधुनिक दवाइयाँ लोकमानस के लिए आकर्षण बनी हुई है । जहाँ तक रोग की बात है अत्याधुनिक शरीर शास्त्र का अध्ययन करने के अनुसार व्यवस्थागत रोगो यथा गृधसी, श्वास, भुजस्तंभ, कटिग्रह, स्तंभगत, मधुमेह, रक्तचाप जैसे रोगों का कारण अज्ञात एवं असाध्य (ठीक न होने वाला) रोग बतलाते है फिर भी हर चिकित्सक कोई न कोई दवाइयों को देता ही रहता है ।

इसी प्रकार इसके आगे दवाइयों का संसार है, जो अत्याधुनिक विधि से बनाई जातीं है । उनसे जितना लाभ होता है इससे अधिक परेशानी होने की सूचना, उन्हीं दवाई से चिकित्सा करने वाले स्वयं बताया करते है । ये सब होते हुए भी ऐसी अत्याधुनिक दवाइयाँ लोकमानस के लिए आकर्षण बनी हुई है ।

इसी के साथ और इंजीनियरिंग तकनीकी-प्रौद्योगिकी के माध्यम से धरती, जल और हवा पर अनेकानेक यंत्र संचारित हैं ही । इस धरती के प्रभाव क्षेत्र से दूर-अति दूर में इस धरती के गति से ताल मेल रखता हुआ उपग्रहों को स्थापित कर दूर-संचार और दूर-दर्शन संबंधी गति को तकनीकी सम्बद्ध प्रौद्योगिकी क्रिया विधि से इस धरती पर सफल बना चुके । ऐसे ही बड़े-बड़े यंत्रो की

और जागृत-प्रक्रिया-प्रणाली वर्तमान में प्रकाशित होने योग्य व्यवस्था स्थापित रही है। पुनश्च विकास, विकास क्रम वर्तमान में प्रकाशित रहना ही अस्तित्व सहज सहअस्तित्व रूप में कार्यकलापों, परिणामों, परिवर्तनों का प्रयोजन प्रमाणित है।

इस धरती पर मानव अपनी परम्परा के रूप में प्रकाशित होने के पहले से ही यह धरती जीव-जानवर, वन-वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, मृदा, पाषाण, मणि, धातु से समृद्ध रही है। मानव की वंश परम्पराएँ विविध भौगोलिक परिस्थितियों में आरंभ होकर स्वयं स्फूर्त कल्पनाशीलता और पहचानने की आवश्यकता व उत्साह के योगफल में सर्वप्रथम खाने-पीने योग्य वस्तुओं की पहचान, शरीर रक्षा क्रम में आवास पद्धति को अलंकार वस्तुओं को पहचानने की गवाही विगत से प्राप्त हो चुकी है। साथ ही मानव आरंभिक काल से ही भयत्रस्त होकर बचाओ आर्तनाद करता आया। यह दीनता और विपन्नता का द्योतक रहा है। यह मानव को स्वीकार नहीं हुआ। जैसे ही विज्ञान मानस मानव कुल में स्थापित हुई वैसे ही प्रकृति पर विजय पाने का, शोषण व प्रयास प्रक्रियाओं के रूप में क्रियान्वयन होते आया। शनैः शनैः प्रकृति पर विजय पाने की आवाज इस दशक में काफी हद तक दबी हुई दिखाई पड़ती है। इन दिनों जितने भी विज्ञान सभायें होती है उनमें प्रकृति के विजय के स्थान पर प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन क्रिया के अर्थ में शब्द का प्रयोग करते है। यही विज्ञान कुल अर्थात विज्ञान परम्परा में आवाज का बदलाव है। यह बदलाव होते हुए कार्य विधि में धरती के साथ अपराध क्रिया का तादाद बढ़ गई।

विजय पाने का अर्थ सर्वविदित है ही। आदिकाल से बाघ व भालू पर विजय पाने की घटना उनके नाश के साथ ही रही है।

इसी प्रकार प्रकृति पर भी विजय पाने का अर्थ प्राकृतिक वैभव को नाश करने अथवा विध्वंस करने को मानव तत्पर हुआ। इसमें काफी हद तक मानव की हविस पूरी हुई। हविस का तात्पर्य अपनी मनमानी विधि से सुविधा संग्रह, भोग, अतिभोग की ओर बढ़ते जाने से है। अधिकांश लोगों को इस दशक में समझ में आया है। इसके साथ यह भी समझ में आया है कि सुविधा संग्रह का तृप्ति बिन्दु नहीं है। इस धरती में जो सम्पदायें वन-खनिज के रूप में रही हैं। उसी का दोहन (शोषण) व छीना-झपटी के रूप में देखा जा रहा है। वन का क्षय होते ही आया। इस शोषण विधा में यह भी देखने को मिला कि शासन तंत्र द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के शोषण को वैध मानते है और अन्य व्यक्तियों द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के शोषण किये जाने पर उसे अवैध मानते हैं। इसी बीच द्रोह-विद्रोह घटनाएँ घटित होते ही आयी आज तक की सभी घटनाएँ चाहे वैध रही हो या अवैध रही हो सजी धजी इस धरती को तंग करती हुई एवं धरती तंग होती हुई देखने को मिली। धरती गर्म होती हुई, समुद्र का जल बढ़ता हुआ, सर्वाधिक जगह मे वर्षा कम होती हुई, ठंड कम होती हुई, गर्मी बढ़ती हुई, नदी नाले सूखते हुए, जल स्तर धीरे-धीरे नीचे जाता हुआ, गर्मी के दिनो में सर्वाधिक कुआँ तालाब सूखता हुआ देखने को मिल रहा है। यह बीसवीं

इस धरती में जो सम्पदायें वन-खनिज के रूप में रही हैं। उसी का दोहन (शोषण) व छीना-झपटी के रूप में देखा जा रहा है। वन का क्षय होते ही आया। इस शोषण विधा में यह भी देखने को मिला कि शासन तंत्र द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के शोषण को वैध मानते है और अन्य व्यक्तियों द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के शोषण किये जाने पर उसे अवैध मानते हैं।

में भली प्रकार से फंस चुकी है यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि यश का तात्पर्य बहुत लोग जिनका चेहरा-मोहरा को भली प्रकार से पहचानते है। जिसे बच्चे-बच्चे जानते है ऐसा चेहरा-मोहरा नाम से पहचानने वाली घटना को हम तीन क्रम में देखते है :-

1. राजनेता के रूप में
2. कलाकारों के रूप में
3. डाका-डकैती और इन्द्रजाल जादू के रूप में देखा गया।

इन सभी की पहचान बनाने के काम में माध्यम निष्ठा से लगे हुए है, माध्यमों का खाका आज की स्थिति में रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिका, उपन्यास विधाये है। इससे पता लगा कि यश पाने की वस्तु क्या है। यश का मतलब आज के कलाकारो का कथन जो हम सुनते है लोग जो चाहते हैं अथवा लोक शक्ति के अनुसार गति है। सम्भाषण करते हैं प्रदर्शन करते हैं हर राजनेता का कथन-हम जनसेवक है जबकि इन किसी में पद व पैसे के अतिरिक्त लक्ष्य दिखाई नहीं देता। डाकूओं का कथन यही है शासन-प्रशासन से किया गया अत्याचार ही डाकूओं को जन्म देता है। सांस्कृतिक रूढ़ि और समुदाय मानसिकता अपना पराये का दीवाल बनाते ही आया।

> *ये सब दिशा विहीन राजनीति, प्रयोजन विहीन शिक्षा नीति, रहस्यमयी धर्मनीति (रहस्यमयी ईश्वरता) प्रधानतः हर मानव को अपनी मानसिकता को सार्वभौम रूप देने में असफल रही है। जबकि हर मानव धरती और धरती में पर्यावरण के सन्तुलन के पक्ष में व असंतुलन के विपक्ष में है।*

ये सब दिशा विहीन राजनीति, प्रयोजन विहीन शिक्षा नीति, रहस्यमयी धर्मनीति (रहस्यमयी ईश्वरता) प्रधानतः हर मानव को

अपनी मानसिकता को सार्वभौम रूप देने में असफल रही है। इस समय में इस धरती पर छः-सात सौ करोड़ आदमी होने का आँकड़ा है। इन छः-सात सौ करोड़ आदमी में सर्वाधिक लोगो के अनुसार 90% आदमी इन सभी विधाओं में स्पष्टता, निश्चयता व सार्थकता को समझना चाहता है और ऐसी सार्वभौम समझदारी को जीवन शैली और दिनचर्या में पहचानना व मूल्याँकन करना चाहते हैं। इस सामान्य विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हर मानव धरती और धरती में पर्यावरण के सन्तुलन के पक्ष में व असंतुलन के विपक्ष में है।

इतने लम्बे अरसे की मानव परम्परा अभी तक धर्मगद्दी, शिक्षागद्दी, और राज्यगद्दी में कल्याणकारी दिशा व लक्ष्य को पहचान नहीं पायी, इन तीनों विधाओं में होने वाली प्रवृतियों व कार्यो के पक्ष में अथवा कार्यो के रूप में शिक्षा गद्दी के कार्यकलाप को देखा जा रहा है। अतएव इन चारों प्रकार की परम्परायें अपने आप में भ्रष्ट हो चुके हैं। हर मानव इनमें परिवर्तन चाहता है। इसकी आपूर्ति के लिए ही अथवा इस ओर प्रवर्तित करने के लिए ही इस व्यवहारात्मक जनवाद को प्रस्तुत किया है। जिसमें

(1) धर्म - मानव धर्म स्पष्ट होने
(2) शिक्षा - मानव चेतना मूल्य शिक्षा में पारगंत प्रमाण होने
(3) राज्य - अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सहज विधि-विधान राज्य राष्ट्र चेतना में पारंगत प्रमाण होने का जन चर्चा व संवाद सहज प्रस्ताव है।

अथवा रास्ता मिला ही नहीं है । मानव इतिहास के अनुसार अभी तक मानवीयता पूर्ण दिशा अथवा मानव सहज दिशा अथवा जनाकांक्षा किसी परम्परा में स्थापित नहीं हो पायी । जनाकांक्षा अथवा मानवाकांक्षा का स्वरूप में निरीक्षण परीक्षण सर्वेक्षण करने पर पता चला कि हर मानव, हर परिवार, हर समुदाय समाधान समृद्धि अभय, सहअस्तित्व को वरता है । वरने का तात्पर्य सुनने मात्र से ही कोई भूला हुआ चीज को स्मरण में ला लेना और स्वीकार लेने से है । वर लिया है-का तात्पर्य पहले से ही इन आकाँक्षाओ से सम्पन्न रहने से भी है । इस क्रम में आकांक्षा और जनप्रवृतियों का निरीक्षण परीक्षण सर्वेक्षण विधि को अपनाने से अंतर्विरोध, विपरीत परिस्थितियाँ होता हुआ देखा गया । इसे हर व्यक्ति परीक्षण कर देख सकता है ।

जितने भी माध्यमों को देखा उन सब में सर्वाधिक अपराध और श्रृंगारिकता का प्रचार होते आये । ये सब माध्यम कहीं न कहीं रास्ते से भटके है अथवा रास्ता मिला ही नहीं है । मानव इतिहास के अनुसार अभी तक मानवीयता पूर्ण दिशा अथवा मानव सहज दिशा अथवा जनाकांक्षा किसी परम्परा में स्थापित नहीं हो पायी ।

अंतर्विरोध सविपरीत परिस्थितियों को मानव में निहित संवेदनशीलता अपेक्षित संभावित संज्ञानशीलता को विपरीत ध्रुवो के रूप में देखा गया । यह हर व्यक्ति अपने में और अन्य व्यक्तियों में देखने की व्यवस्था सदा सदा समीचीन है । समीचीनता का तात्पर्य सहजता से सुलभ होने की संभावना से है अथवा पास में है और प्रयोग करना ही एक मात्र कार्य है । संज्ञानशीलता विधि से ही हर व्यक्ति समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को सर्वशुभ के अर्थ

में स्वीकारता है जबकि संवेदनशीलता विधि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधेन्द्रियों के अनुकूलता, प्रतिकूलता क्रम मे ही संग्रह सुविधा भोग अतिभोग की ओर ग्रसित होता हुआ समुदायो, परिवारो और व्यक्तियों को देखा गया है । बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में भारत में सर्वेक्षण विधि से निरीक्षण करने पर पता चला है कि सौ व्यक्तियों को हम पूछते है कि सर्वशुभ होना चाहिये कि नहीं ? और आगे विचार और कार्यक्रम होना चाहिये कि नहीं ? ऐसा पूछने पर 90 से अधिक लोग तुरंत स्वीकारते है सर्वशुभ होना चाहिये । विचार और कार्यक्रम होना चाहिये या नहीं - इस मुद्दे पर प्रतिशत निकालने पर पता चला 80 प्रतिशत होना चाहिये, इस बात को स्वीकारते हैं ।

संज्ञानशीलता विधि से ही हर व्यक्ति समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को सर्वशुभ के अर्थ में स्वीकारता है जबकि संवेदनशीलता विधि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधेन्द्रियों के अनुकूलता, प्रतिकूलता क्रम मे ही संग्रह सुविधा भोग अतिभोग की ओर ग्रसित होता हुआ समुदायो, परिवारो और व्यक्तियों को देखा गया है ।

जब दूसरे प्रश्न को दो भागो में बाँटते है - कार्यक्रम होना चाहिये कि नहीं, तब इस स्थिति में 60 प्रतिशत लोग सहमत हो पाते हैं । बाकी लोगो में आगे बिना पूछे ही अधिकांश लोग अपने में से बताते है कि ये हो ही नहीं सकता है कर ही नहीं सकते हैं । ऐसे ही किसी किसी से सुनने को मिलता है वह भी विशेष कर अध्यात्मवादी खेमे में जीते हुए लोग कहते हैं कई अवतार हो गये कई महापुरूष हुए, सिद्ध हुए, तपस्वी हुए, चमत्कारी हुए, यति-सति हुए, ईश्वर दूत और ज्ञानी हुए ऐसे अनगिनत लोग होते हुए अभी तक सर्वशुभ घटित हुआ नहीं है । भौतिकवादी खेमे

यह भी एक परिस्थिति जन्म चुकी है कि अधिकांश लोगो ने उत्पादन कार्य में भागीदारी की आवश्यकता को मान लिया है। जबकि इस स्थिति में मानव के लिए उत्पादन कार्य के लिए प्रवृति घटती जा रही है। अतएव आज की स्थिति में कुछ विडम्बनाएँ जनचर्चा के रूप में समावेशित हुई है।

क्रमागत विधि से मानव की आवश्यकताएँ हर दिन बढ़ती आई। इस मुद्दे पर हमारा अनुभव है कि सन 1950 में प्रौद्योकिी विधि से आवश्यकीय वस्तु की संख्या जितनी भी रही, वह सब बढ़कर वस्तुओं की संख्या सन 1995 तक 10 गुणा अधिक हो चुकी है इसमे से सुंविधावादी वस्तुएँ ज्यादा बढ़ती गयी और सभी माध्यम भोग मानसिकता को बढ़ावा देने में उद्यत हो गये। संवेदनशील विधि से जो कुछ भी किया जा सकता है, वह सब अधिकतम कर चुके। प्रकारान्तर से जनमानस में चर्चा का विषय यही बना रहा। यह सब धरती के साथ, नैसर्गिकता के साथ, मानव प्रकृति के साथ द्रोह, विद्रोह, शोषण, करने के परिणाम में सुविधाजनक सामग्रियों की संख्या-तादाद बढ़ता ही आया। भोगवादी मानसिकता मे संग्रह की वितृष्णा इस शताब्दी के मध्य भाग से सर्वाधिक 100 गुणा से अधिक प्यास बढ़ चुकी।

जनचर्चा में सुविधा संग्रह का सर्वाधिक बोलबाला इस बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देखने को मिला। इस विधि से यह भी इस समय के मेधावियों को पता लग चुका है कि सब को इतना सुविधा संग्रह, मिलना संभव है ही नहीं। प्रौद्योगिकी और उसके लिए उर्जा स्रोत रूपी खनिज कोयला और तेल का दोहन सदा-सदा से, जब से वैज्ञानिक युग आरम्भ हुआ तब से दिन दूना रात चौगुना होता ही आया है। इन सब के परिणाम में जनचर्चा में

यह भी देखा गया, वस्तु संग्रह की ओर सर्वाधिक लगाव का संकट पीड़ित हुआ, स्थिति को भी आज देखा जा रहा है। उक्त मुद्दो पर अर्थात संवेदनशील विधि से जितने भी मुद्दे पर हम अपने में गतिशील होने में समर्थ हुए वह सब किसी न किसी अव्यवस्था के चक्कर में ही फँसता रहा। यह भी देखने सुनने में मिल रहा है अनुसंधान शोध में इन बातो की झलक आ रही है, हमें किसी सार्वभौम व्यक्तित्व रूपी मानव अथवा नर-नारी को पहचानना ही होगा, उसे लोक-व्यापीकरण करने के लिए सार्थक कार्यक्रम की आवश्यकता है। इसी क्रम में श्रेष्ठतम प्रौद्योगिकी शिक्षण संस्थाओ में भी मूल्यों की चर्चा पर पहले पहल करना भी आज के एक कार्यक्रम के रूप में देखने को मिल रहा है।

संवेदनशील विधि से जितने भी मुद्दे पर हम अपने में गतिशील होने में समर्थ हुए वह सब किसी न किसी अव्यवस्था के चक्कर में ही फँसता रहा। यह भी देखने सुनने में मिल रहा है अनुसंधान शोध में इन बातो की झलक आ रही है, हमें किसी सार्वभौम व्यक्तित्व रूपी मानव अथवा मानव को पहचानना ही होगा, उसे लोक-व्यापीकरण करने के लिए सार्थक कार्यक्रम की आवश्यकता है।

मूल्यों के संदर्भ में जनचर्चा प्रकारान्तर से सुनने को मिलता ही रहा। इस शताब्दी के मध्यकाल से अंतिम चरण तक जो देखा गया, उसका प्रधान मुद्दा शासित रहना मूल्य रक्षा के स्वरूप में सुनने में आती रही। जैसे रूढ़ियाँ, परम्परा, नाच-गाना, कपड़ा-आभूषणो का पहनावा, नित्यकर्म, नैमित्यिक कर्म को मूल्य रक्षा का प्रमाण माना जाता रहा। मान्यताओं पर आधारित कर्म आचरण रूपी अनेक रूढ़ियाँ, अनेक परम्परा के रूप में इस धरती पर समायी। विज्ञान युग का प्रभाव इन परम्पराओं को इस

ज्यादा मुद्रा संग्रह किया हुआ लोग विभिन्न पंथ परम्परा में कहे गये ईश्वरीय कानून की रक्षा करने के लिए उनके अनुसार स्मारको को मिट्टी पत्थर लोहा सीमेन्ट से निर्मित करता हुआ, पैसा देता हुआ देखने को मिला। इसमे लेने वाला लेकर के बहुत उत्साही दीखते है। देने वाला देकर भी प्रसन्न दिखते है । चाहे ये दोनो जितने भी प्रसन्न रहे, ऊपर कहे गये द्रव्यो से ही सभी स्मारक बना हुआ है। इसका विश्लेषण समीक्षा में अल्प आंशिक लोगो के बीच यह भी चर्चा सुनने को मिलता है ये सभी स्मारक मानव में मतभेदो का अड्डा है। आस्था के साथ-साथ किसी एक समुदाय में आस्था की प्रेरणा स्थली दूसरे समुदायो के लिए द्वेष की स्थली है । इस प्रकार से सोचने वाली की संख्या वृद्धि हो रही है।

इसी क्रम में मूल्यों की चर्चा की स्थली उक्त प्रकार की जनचर्चा से निकलती है कि सुविधा संग्रह, भोग-अतिभोग,बहुभोग जो कुछ भी विपरीत सविपरीत घटनाएँ घटती है। उन सब को मूल्य बताया जा रहा है। इसी प्रकार आस्था, द्वेष, भय, प्रलोभन, ईश्वरीय कानून परस्ती विधि से किया गया जितने भी द्रोह, विद्रोह, शोषण को और उसके विपरीत क्रिया को मूल्य बताया जाता है और इन ख्याति को शिक्षा में समावेश करने के लिए गोष्ठी भी करते है। युद्ध संबंधी विजय, पराजय और उसकी ख्याति पर बहुत सारी जनचर्चा हो चुकी है। जनचर्चा में यह भी सुनने को मिलता ही रहा कि जितने भी अवांछित-वांछित क्रियाकलाप, फल परिणामों को कला का नाम देते रहे, शनैः शनैः कुछ विद्वान कहलाने वालो के मुँह से यह भी सुनने को आया कि बीड़ी, दारू, चोरी करना भी मूल्य है और इनको न करना भी मूल्य है । इस प्रकार चर्चाओ का बदहाल, बदहाल का मतलब कुछ भी नहीं पाना, हम बहुत कुछ सुन चुके है,

और भी बहुत कुछ सुनने की संभावना है ही।

परिकथाओं में जीव जानवर, पक्षी से अनेकानेक भूत-भविष्य का वर्णन करने वाली और ज्ञानार्जन करने की अनेक कथा मानव लिख चुके है। उन कथाओं में यही प्रभाव मनःपटल पर होना पाया गया कि मानव से जीव जानवर कहीं ज्यादा अच्छे हैं। ये सुनने के उपरान्त हम अपने में विचार करने लगे कि मानव की जरूरत ही क्या रही ? इस धरती पर भार रूप होने के लिए ? धरती को उजाड़ने के लिए ? अथवा धरती पर जितने भी कार्यकलाप फल परिणाम हैं दुःख, पीड़ा, कुंठा, निराशा के रूप में त्रस्त होने के लिये है। निष्कर्ष यही हुआ इतने लंबे चौड़े विधाओ में और अनेक विधाओ में दौड़ता हुआ मन लोकमानस है। वैसा ही मेरा मन में भी होना पहचाना । इसी आधार पर मेरा मन सदा-सदा से, जब से शरीर संवेदनाएँ स्पष्ट होने लगी है तब से ही सुरक्षा को चाहने वालो मे से पहचाना यदि पहले कही हुई पीड़ाएँ नियति है, मुझे सुरक्षा की आवश्यकता क्यों महसूस हो रही है ? इस विधि से मानसिक रूप में उठी उर्मि अनेको प्रकार में फँसते-फँसते अंतिम निश्चयन यही आया कि विगत के सभी अनिश्चयात्मक कुंठा त्रासदी दुख को स्वीकारने योग्य जितने चर्चाए समुदाय-परम्परा में जन परम्परा में प्रचलित है प्रभावित है ये सब निरर्थक है। इसमें

> ***मानव से जीव जानवर कहीं ज्यादा अच्छे हैं। ये सुनने के उपरान्त हम अपने में विचार करने लगे कि मानव की जरूरत ही क्या रही ? इस धरती पर भार रूप होने के लिए ? धरती को उजाड़ने के लिए ? अथवा धरती पर जितने भी कार्य-कलाप फल परिणाम हैं दुःख, पीड़ा, कुंठा, निराशा के रूप में त्रस्त होने के लिये।***

हमारा संतुलन सूत्र क्या है ? यह भी एक चर्चा का मुद्‌दा बनता है। परम्परात्मक विधि से ही हम मानव इसी धरती पर उक्त सभी नैसर्गिकता के साथ होते हुए आए। नैसर्गिकताओं से मानव पर जो उपकार होता आया है वह स्वीकार हुआ है। जो प्रतिकूल होता है अस्वीकार होता है। जैसे हवा, पानी, अधिक होने से या कम होने से अनुकुलता या प्रतिकूलता की स्वीकृति मानव में होती है। ये हर मानव अच्छी तरह से स्वीकार सकता है। जो हम स्वीकारे रहते हैं वही संवाद में आना स्वाभाविक है। सार्थक स्वीकृतियाँ सार्थकता के अर्थ में प्रभावित होना पाया जाता है।

सर्वमानव में सार्थकताएं स्वीकृति के रूप में समाधान, समृद्धि, अभय सहस्तित्व के रूप में होना पाया जाता है। संवाद, तर्क का उद्‌देश्य किसी निर्णय पर पहुँचने का ही सूत्र है। आदिकाल से ये आशय रहा है हर नर-नारी का उद्‌देश्य सर्वभौम रूप में पहचान न होने से ही इन्द्रिय सन्निकर्ष के लिए अनुकूलता प्रतिकूलता को केन्द्र बनाकर जनचर्चा सम्पन्न होती आई। जबकि सर्वमानव की ज्ञान विवेक विज्ञान सम्पन्न व्यवहार प्रतिष्ठा और कर्म-प्रतिष्ठा के आधार पर ही पहचान हो पाती है। इन दोनो विधाओ के रूप मे विचार, स्वीकृति, निश्चयन, मानव में समाहित रहने की आवश्यकता पायी जाती है। इनके परिष्कृति के

हर नर-नारी का उद्देश्य सर्वभौम रूप में पहचान न होने से ही इन्द्रिय सन्निकर्ष के लिए अनुकूलता प्रतिकूलता को केन्द्र बनाकर जनचर्चा सम्पन्न होती आई। जबकि सर्वमानव की व्यवहार प्रतिष्ठा और कर्म-प्रतिष्ठा के आधार पर ही पहचान हो पाती है। इन दोनो विधाओ के रूप मे विचार, स्वीकृति, निश्चयन, मानव में समाहित रहने की आवश्यकता पायी जाती है।

आधार पर ही कर्म-प्रतिष्ठा और व्यवहार प्रतिष्ठा संकीर्ण और विशाल, सार्वभौम और व्यक्तिवादी होना पहचाना जाता है। मूलतः सहअस्तित्व स्वीकृत होने के आधार पर जो भी दृष्यमान है, जो भी समझ में आता है, जो भी करने-कराने, सीखने-सिखाने, समझने-समझाने को प्रवृति होती है ये सब उद्‌देश्यों के आधार पर ही प्रवर्तित होना देखा जाता है। जैसे अभी पढ़ने को गौरवमयी, आवश्यकीय कृत्य के रूप में हर मानव स्वीकारा हुआ है। अति प्राचीन-जितने भी शिक्षक रहे है वे सम्मान, पारितोष पाने के अर्थ में ही अथवा पुरस्कृत होने के अर्थ में ही प्रवर्तित रहे। वही शिक्षक अब वेतन भोगिता के रूप में प्रतिफल मान्यता को स्वीकारते हैं। आज भी अर्थात सन 2000 के अवधि में भी यही उद्‌देश्य स्वीकृत है।

आज की स्थिति में सम्पूर्ण शिक्षा, नौकरी, व्यापार, प्राद्यौगिकीय प्रवृति के रूप में प्रवर्तित होता हुआ देखने को मिल रहा है। प्राद्यौगिकीयता में सभी उत्पादन कार्य जहाँ तक जनोपयोगी है वह सब सार्थक होना स्पष्ट है। इन सभी उत्पादनीयता के पक्ष में जनसंवाद, हर उत्पादन की पवित्रता, सटीकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के अर्थ में संवाद की आवश्यकता है ही। जनसंवाद एक अनुस्युत क्रिया है यह मूलतः आज भी आगे भी मनाकार को साकार करने के अर्थ में है। इसी क्रम में विविध प्रयास, शोध योजनाएँ, प्राद्यौगिकी, उत्पादन के अर्थ में जनकार्य स्थली तक पहुंच चुका है। इसमें बहुत सारे लोग भागीदीरी कर ही रहे है। प्राद्यौगिकी की नौकरी, व्यापार ये सभी लाभोन्मादिता के रूप में उन्मुख, प्रवर्तित, कार्यरत होता हुआ देखने को मिलता है। यही मुख्य मुद्‌दा है जिसको देखने वाले सभी इन तीनो कार्यो में नहीं है या ये तीनो कार्य मिला नहीं है ऐसे सभी इनके प्रवृतियों को देखकर अपने

आज की स्थिति में नहीं है । आज भी किसी प्रथमिकता में भले चौथे-पाँचवे हो युद्ध संघर्ष की स्वीकृतियाँ सुरक्षा, परिवार रक्षा, देश रक्षा, राज्य रक्षा के अर्थ में स्वीकार होते हुए देखने को मिलती है । इस रक्षा विधियो में समरतंत्र को पंजीकरण किये जाने की विधि से अंतविहीन युद्धतांत्रिक सामग्री और प्रयोग परिणाम की चर्चा-संवाद जनमानस तक आ चुकी है । युद्ध में जितना भी धन नियोजन हुआ है उस मुद्‌दे पर जितना भी संवाद किया जाता है, किया गया है, उसमें युद्ध और उसके लिए धन का नियोजन निरर्थकता मे ही समीक्षित हो पाता है । सार्थकता की ओर पहला मुद्‌दा यही है मानव कुल में युद्ध मुक्ति हो । पुनश्च प्रश्न चिन्ह होता है - युद्ध मुक्ति का आधार स्रोत क्या है ? यहाँ पहुंचने पर यही आवाज निकलती है मानव को अध्ययन पूर्वक सटीक पहचाना जाए। जब तक समुदाय वर्गो व्यक्ति वाद के रूप में मानव जाति को पहचाना जाता रहेगा, तब तक युद्ध मुक्ति नहीं है । अतएव इसका उपाय यही है कि मानव अपने स्वरूप में समुदाय सीमाओ से मुक्त सर्व मानव एक इकाई है । चूँकि मानव शरीर सप्त धातुओ से रचित रहता है चाहे काले-पीले-भूरे या गोरे आदमी हो ठिगना हो, उँचा हो, मोटा या दुबला हो । इन सबमें सप्त धातुओं का निश्चित अनुपात देखने को मिलता है । शरीर रचना

> ***युद्ध मुक्ति का आधार स्रोत क्या है ? यहाँ पहुंचने पर यही आवाज निकलती है मानव को सटीक पहचाना जाए । जब तक समुदाय वर्गो के रूप में मानव जाति को पहचाना जाता रहेगा, तब तक युद्ध मुक्ति नहीं है । अतएव इसका उपाय यही है कि मानव अपने स्वरूप में समुदाय सीमाओ से मुक्त इकाई है ।***

विधि हर भूरे, हर काले, हर गोरे में समान रूप में पहचानने में आता है ।

मानव के हर रंग रूप सम्बन्ध मे समानता संवाद का दूसरा मुद्‌दा बनता है कि हर मानव अपने पहचान को बनाए रखने के लिए बाल्यकाल से ही प्रयत्नशील है । पहचान प्रस्तुत करने की प्रवृतियाँ विभिन्न तरीके से प्रस्तुत होती हुई आंकलित होती है । परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न रहते हुए प्रवृतियों में समानता होती ही है । इसी के साथ बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक संरक्षण में पोषण में भरोसा रखने वाली प्रवृत्ति मिलती है । संरक्षण पोषण के क्रम में न्याय की अपेक्षा प्रस्फुटित होती हुई देखने को मिलती है । किशोर अवस्था तक सही कार्य व्यवहार करने की इच्छाएँ आज्ञापालन, अनुसरण, सहयोग के अनुकरण के रूप में प्रवृत्तियों को देखा जाता है । यह बहुत अच्छे ढंग से समझ में आता है । यह जन चर्चा का विषय है । संवाद के लिए ये दोनो मुद्‌दों अच्छे ढ़ंग से सोचने, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण करने व्यवहार विधि से विचारो को सम्बद्ध करने में काफी उपकारी हो सकते है । तीसरा मुद्‌दा देखने को मिलता है कि हर मानव संतान शिशुकाल से ही जब से बोलना जानता है तब से जो भी देखा सुना रहता है उसी को बोलने में अभ्यस्त रहता है । इस ढ़ंग से हर मानव संतान बाल्यकाल से ही सत्य वक्ता होना

> ***मानव परम्परा का दायित्व है कि मानव संतान को सत्य बोध करायें । इसी के साथ सही कार्य, व्यवहार का प्रयोजन बोध सहित पारंगत बनाने की आवश्यकता है । न्याय बोध हर संतान को कराने का दायित्व परम्परा के पक्ष में ही जाता है । इस ढंग से बच्चों के लिए प्रेरक साहित्यो, कविताओ की रचना करने के लिए ये तीनों सार्थक प्रवृतियाँ है ।***

मे ही सार्थक होने की बात आती है। व्यवहार में सार्थक होने के लिए संवाद में इस तथ्य को पहचाना जा सकता है कि परस्परता में ही व्यवहार होता है और प्राकृतिक ऐश्वर्य और मानव की परस्परता में ही उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है।

व्यवहार कार्यकलाप में, उत्पादन कार्यकलाप में अनेकानेक विधाएँ जनसंवाद के लिए विषय बन जाती हैं। सबंध एक मुद्‌दा है यह सहअस्तित्व में ही प्रमाणित होना पाया जाता है। धरती, हवा, पानी, जंगल, पहाड़ वन, वनस्पति, अन्न, औषधियो के साथ, परस्पर, सहअस्तित्व होना पाया जाता है। इतना ही नहीं सूरज, चाँद, सौर व्यूह, आकाश गंगा के साथ मानव का सहअस्तित्व है ही। इन सभी विधाओं मे मानवसंवाद अपने लक्ष्य के अर्थ मे होने की आवश्यकता है।

> ***समाधानों के अर्थ में संवाद होना स्वाभाविक है। ऐसे संवाद मानव लक्ष्य के साथ होने वाली दिशा के अर्थ में होना पाया जाता है। सम्पूर्ण संवाद लक्ष्य को पहचानने के क्रम मे सार्थक होता है। लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा निर्धारित होने पर संवाद सार्थक होता है। फल परिणाम के रूप मे लक्ष्यपूर्ति, उसकी निरन्तरता का होना संवाद सहित किया गया प्रवृत्ति, निष्कर्ष और प्रयासो के फलन में ही हो पाता है।***

सर्वप्रथम मानव की परस्परता में मानवकुल अनेक रंग, नस्ल के रूप में पहचाना जाता है। ऐसी परस्परताएँ जीव संसार रूपी अस्तित्व में रहती ही है। परस्परताएँ सहअस्तित्व सहज है। सहअस्तित्व में हम परस्परता को पाते है इसी क्रम मे मानव में, से, के लिए अखण्ड समाज में परस्परताएँ उपलब्ध है ही। इन परस्परताओं को संबंध के रूप में पहचाना जाता है। सबसे विशाल संबंध मित्र के रूप में, भाई के रूप में होना पाया जाता है। तर्कसंवाद का भूमि

बनता है मित्र, भाई संबंधो मे हर विधाओ मे समाधान को पहचानना महत्वपूर्ण कार्य है। समाधानों के अर्थ में संवाद होना स्वाभाविक है। ऐसे संवाद मानव लक्ष्य के साथ होने वाली दिशा के अर्थ में होना पाया जाता है। सम्पूर्ण संवाद लक्ष्य को पहचानने के क्रम मे सार्थक होता है। लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा निर्धारित होने पर संवाद सार्थक होता है। फल परिणाम के रूप मे लक्ष्यपूर्ति, उसकी निरन्तरता का होना संवाद सहित किया गया प्रवृत्ति, निष्कर्ष और प्रयासो के फलन में ही हो पाता है। ये सभी प्रयास और फलन बहुआयामी विधि से मानव कुल में ही सार्थक हो पाता है।

सार्थकता के लिए व्यवहार एक मुद्‌दा है। व्यवहार में संबंधो को पहचानना होता ही है। इन संबंधो को पहचानने के रूप में कम से कम विश्वास मूल्य प्रमाणित होना एक स्वाभाविक उपलब्धि है, प्रक्रिया है। विश्वास होने के आधार पर आरंभ होते हुए प्रयोजनो को, लक्ष्यो को और प्रक्रियाओं को पहचानने के अर्थ मे हर संवाद सार्थक होता है। मानव सम्बंधो में ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह सार्थक होते है। ये सब अभ्युदय के अर्थ में ही प्रयोजनशील होना पाया जाता है। अभ्युदय स्वयं में सर्वोतोमुखी समाधान है। मानव ही इसका धारक वाहक है। संबंधो मे ही इसका

> ***अभ्युदय स्वयं मे सर्वोतोमुखी समाधान है। मानव ही इसका धारक वाहक है। संबंधो मे ही इसका प्रमाण होना शाश्वत सत्य है। इसी आधार पर मानव परिवार से अखण्ड समाज तक समाधान सूत्र को फैला पाते है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का प्राण तत्व है।***

कराना संवाद का सार्थकता है। उसी के साथ लक्ष्य और सार्थकता को स्पष्ट कर लेना संवाद का प्रधान प्रयोजन है।

मानव व्यवहार और पूरकता :

जन चर्चा के मुद्दे मे पूरकता एक मुद्दा है। पूरकता के आधार पर ही जनचर्चा द्वारा, संवाद द्वारा, स्पष्टीकरण द्वारा समाधान के छोर तक पहुँचते है। समाधान मानव परम्परा के लिए स्वीकृत आवश्यकता, प्रधान आवश्यकता अथवा परम आवश्यकता है। समाधान अपने में क्यो, कैसे का सहज उत्तर है। हर मुद्दे के साथ क्यो, कैसे, कितना का प्रश्न होता ही है। जितने भी क्यों की बात आती है या प्रश्न उठता है उसका उत्तर का आधार मूल कारण ही होता है। कैसे का उत्तर हम पाने के लिए दौड़ते हैं। प्रक्रिया, प्रणाली पद्धति के सूत्रों के आधार पर प्रक्रियाएँ स्पष्ट हो जाती है। कितना का उत्तर, फल परिणाम और आवश्यकता की तृप्ति के अर्थ में स्पष्ट हो जाता है। इसकी स्पष्ट चर्चा करने के योग्य इकाई केवल मानव ही है। मानव के साथ व्यवहार जुड़ा ही रहता है। व्यवहार सदा-सदा से मानव के साथ ध्रुवीकृत होता आया है। चाहे नकारात्मक हो चाहे सकारात्मक हो मानव अपनी परस्परता में व्यवहार करना सर्वस्वीकृत हो चुका है। मानव परम्परा में व्यवहार परस्परता में मूल्यों का निर्वाह करने के

> ***मूल्यो के रूप मे संबंध की पहचान और उसकी निरन्तरता की आवश्यकता बनती है। सम्बन्ध, उसकी पहचान और निरन्तरता ही विश्वास है। इस परिभाषा के आधार पर सभी सम्बन्धो के साथ संवाद अपेक्षित रहता है। हर संवाद की सार्थकता में समाधान है। संवाद की सार्थकता क्यो, कैसे, कितना का उत्तर पाने में ही है।***

आधार पर ही प्रमाणित होता है। मूल्यों का निर्वाह संबंधो के आधार पर होना सर्वमानव को स्वीकृत है। मानव मानव के साथ सम्बन्धो को पहचानने की प्रवृति शिशु काल से ही निर्धारित है। यह शब्दो के रूप में सबको स्पष्ट है। मूल्यो के रूप में पहचान और उसकी निरन्तरता की आवश्यकता बनती है। सम्बन्ध, उसकी पहचान और निरन्तरता ही विश्वास है। इस परिभाषा के आधार पर सभी सम्बन्धो के साथ संवाद अपेक्षित रहता है। हर संवाद की सार्थकता में समाधान है। संवाद की सार्थकता क्यो, कैसे, कितना का उत्तर पाने में ही है।

सम्बन्ध की परिभाषा ही है ''पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना'' ऐसे सम्बन्ध का स्वरूप निरन्तरता में ही वैभव और प्रयोजन प्रमाणित होना पाया जाता है। प्रयोजन मूलत: सहअस्तित्व में नित्य प्रमाण ही है। यही जागृति, वर्तमान में विश्वास (परस्परता में भय, शंका मुक्ति) और समाधान होना स्वाभाविक है। इन तीनो विधाओं के आधार पर अथवा इन तीनो विधाओ में प्रमाण होने के उपरान्त समृद्ध होना एक आवश्यकता, सम्भावना और इस हेतु प्रयास होना स्वाभाविक स्वयं स्फूर्त है। इसका तात्पर्य यही हुआ कि हम मानव समझदारी पूर्वक ही समाधानित होते हैं और वर्तमान में विश्वास अर्थात सम्बन्ध की पहचान और उसकी निरन्तरता बनाए रखने में निष्ठा ईमानदारी होने का प्रमाण है। पहचान और उसकी निरन्तरता स्वयं जिम्मेदारी के रूप में स्पष्ट होती है। इस प्रकार समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक ही परिवार व्यवस्था में प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होना और समृद्धि का साक्ष्य स्पष्ट होना पाया जाता है। इसके लिए परिवार में चर्चा, परिवार के कार्य-व्यवहार के लिए चर्चा, संवाद और परिवार लक्ष्य के लिए संवाद

प्रस्तुत हुआ, उन सब में अन्तर्विरोध बना ही है। परस्पर समुदायों में विरोध, विद्रोह, सामरिक कल्पनाएँ बनी हुई है । यह सार्वभौम व्यवस्था व अखंडता का विरोधी है। जबकि हर समुदाय अखंडता, सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अवश्य स्वीकारा रहता है । ऐसी स्वीकृतियो के साथ जीता हुआ मानव अपने में से बनायी हुई मान्यताओं के प्रयोजन को पहचानना चाहता ही है । साथ में सर्वाधिक विरोधी तत्व, धर्म और राज्य कहलाने वाली परम्परा ही है। हर मानव अपने में जागृति की ओर गतिशील होने के लिए सार्वभौम, अखंडता सूत्र बनी हुई है। जबकि धर्म और राज्य समुदाय गति विधि से अखंडता का नारा बताया करते हैं। ऐसा कोई समुदाय धर्म नहीं है, जो अपने को सर्वश्रेष्ठ नहीं बताता और अपने कार्यक्रमो को सार्वभौम नहीं बताता अथवा सबकी जरूरत नहीं बताता।

हर राज्य राष्ट्रीय पर्व दिवस की पावनबेला में राज्य की अखंडता, सार्वभौमता, अक्षुण्णता का नारा अथवा जिक्र करते ही है। जबकि सन 2000 के पहले दशक तक कोई ऐसा राज्य अथवा धर्म नहीं हुआ जिसका, अन्य धर्मो के साथ विरोध न हो, अथवा जो सबके लिए स्वीकार्य हो, ऐसा कोई धर्म ग्रंथ तैयार हो नहीं पाया। सभी अपने ढंग से श्रेष्ठता का दावा करते ही है। हर श्रेष्ठता की कसौटी है, जो सर्वमानव स्वीकृत हो जिसके फलन मे समाधान, समृद्धि, अभय सहअस्तित्व के रूप में प्रमाणित हो, स्वीकृत हो, और व्यवस्था के रूप में मानवीय शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन-कार्य, विनिमय कोष, (लाभ हानि मुक्त) और स्वास्थ्य-संयम कार्य रूप में प्रमाणो का वर्चस्व वर्तमान हो । इस प्रकार अखंड समाज, सार्वभौमता का प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है। इन प्रयोजनो के साथ ही इनकी निरन्तरता

का वैभव होना पाया जाता है।

अखंड समाज में मूल्यो के आधार पर चरित्र और नैतिकता को प्रमाणित करना पाया जाता है । सार्थक संवाद के लिए यह ज्वलंत मुद्दा है। हर मानव सार्थक संवाद ही करना चाहता है। सार्थकता अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में और उसका फल परिणाम समाधान, समृद्वि, अभय, सहअस्तित्व के रूप में स्पष्ट हो जाता है, सार्थक संवाद का प्रयोजन यही है।

सार्थकता अपने में एक मुद्दा है। मानव परम्परागत विधि से ही किसी न किसी भाषा में संवाद करता है। अर्थात संवाद में भाषा का प्रयोग स्वाभाविक है। हर भाषा अपने में संवाद योग्य होना हर मानव को स्वीकार है। हर मानव किशोर अवस्था से ही किसी न किसी भाषा का अभ्यासी होता ही है। क्योंकि हर अभिभावक, अड़ोस-पड़ोस, बंधुजन सम्बोधन सहित भाषा प्रयोग करते ही है । शिशुकाल से ही बोलने का अभ्यास करता हुआ देखने को मिलता है। इसी क्रम में यह विश्वास सुदृढ़ होता है हर मुद्दे पर संवाद करने का तथा इस क्रम में एक दूसरे के साथ अपने अपने भाषा मर्यादा के साथ बातचीत करते हुए देखने को मिल ही रहा है। ऐसे वार्तालाप को किसी लक्ष्य या प्रयोजन के सिलसिले में नियंत्रित करने पर संवाद कहलाता है । यदि लक्ष्य और प्रयोजनो से जुड़ा न

वार्तालाप को किसी लक्ष्य या प्रयोजन के सिलसिले में नियंत्रित करने पर संवाद कहलाता है । यदि लक्ष्य और प्रयोजनो से जुड़ा न हो, ऐसे वार्तालाप को गपशप कहते हैं । हर सूचना भी प्रयोजन के अर्थ में स्वीकार होती है अन्यथा स्वीकार नहीं होती है । इस प्रकार सार्थकता, संवाद का आधार होना, गम्यस्थली होना स्पष्ट हो जाता है ।

है। इसी क्रम में सही गलती होती रही। सही को मानव स्वीकारता आया। सहीपन को संवेदनशीलता में अनुकूलता प्रतिकूलता के रूप में पहचानते आया, यह प्रक्रिया और शोध हर मानव में होता आया। अनुकूलता में सुख भासना दूसरा सौभाग्य रहा। क्योंकि सुख भाषने के आधार पर ही सुख की निरन्तरता की अपेक्षा, कल्पना और प्रयोग होना स्वभाविक रहा। जिसके आधार पर प्रमाणो का लोक-व्यापीकरण उदय होता आया। इस प्रकार मानव के अपने सौभाग्य को पहचानने, प्रयोजनशील होने, प्रमाणित होने और प्रमाण परम्परा बनाने की सीढ़ियाँ अपने आप से लगी है। यह सब मानव प्रवृति की सहज सीढ़ी है। इस क्रम में मानव, (हर नर-नारी) अपने प्रयासो को बनाए रखना देखा जा रहा है। इसी क्रम में संवेदनशीलता के अनुकूलता के मुद्दे में पराकाष्ठा यानि व्यसन में मनमानी पर पहुँचने के उपरान्त भी सुख की निरन्तरता का रास्ता अभी तक तय हो नहीं पाया। व्यवहारात्मक जनवाद दिशा निर्धारित करने के पक्ष में प्रस्तुत है।

मानव के अपने सौभाग्य को पहचानने, प्रयोजनशील होने, प्रमाणित होने और प्रमाण परम्परा बनाने की सीढ़ियाँ अपने आप से लगी है। यह सब मानव प्रवृति की सहज सीढी है। संवेदनशीलता के अनुकूलता के मुद्दे में पराकाष्ठा पर पहुँचने के उपरान्त भी सुख की निरन्तरता का रास्ता अभी तक तय हो नहीं पाया। व्यवहारात्मक जनवाद दिशा निर्धारित करने के पक्ष में प्रस्तुत है।

सुख अर्थात समाधान का अनुभव होना पहले जिक्र किया गया है। मानव ही अनुभव योग्य इकाई है। जीवो में संवेदनाओ की स्वीकृति होना और संवेदनाओं के विरोध को नकारते हुआ देखा जाता है। मानव भी ऐसा ही करता है। संवेदनाओं से जो सुख

भासने का मुद्दा है वह मानव में ही होता है। क्योंकि जीवो में प्रतिकूलता होते हुए भी समाधान के लिए शोध-अनुसंधान करता हुआ देखने को नहीं मिलते। इस प्रमाण से पता लगता है जीव संसार सभी प्रतिकूलता और अनुकूलता को स्वास्थ्य के अर्थ में ही पहचानता है। इसी आधार पर जीव संसार को जीने की आशा के आधार पर जीवनी क्रम में जीता हुआ पहचाना गया है। हर जीवो में जीने की आशा का होना हर मानव को बोध होता ही है। यद्यपि जीवो में जीवन, जीने की आशा को ही प्रमाणित कर पाया है। इसके मूल में यह भी पहचान में आया है कि शरीर को जीवन मानते हुए जीते है। इसलिए स्वस्थता के आधार पर अनुकूलता प्रतिकूलता को पहचाना करता है। यही जीव संसार का शरीर को जीवन मानने का प्रमाण है।

समझदारी का स्वरूप अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन और जीवन ज्ञान का संयुक्त रूप है। अस्तित्व होने के रूप में वैभव है। पुनः नित्य वर्तमान है। दूसरी भाषा मे होने की निरन्तरता ही वर्तमान है। हर परिणाम, परिवर्तन, विकास और जागृति के उपरान्त भी यथास्थितियॉ बनी ही रहती है ही यथा स्थितियॉ होने का साक्षी है।

मानव भी या तो जीवो के सदृश्य शरीर को जीवन मानते हुए अथवा नहीं मानते हुए जीता है। इससे पर्याप्त ज्ञान न होना स्पष्ट हो गया। हर मानव सुखी होना चाहता है सुखी होने का नित्य श्रोत समाधान है। समाधान ही सुख के रूप में अनुभूत होता है। इसका मतलब यह हुआ समाधान ही सुख है। ऐसे समाधान के मूल में समझदारी का होना अनिवार्य है। समझदारी का फलन समाधान है, समाधान का फलन सुख है। इस क्रम में हर नर-नारी के सुखी होने

हम परम्परा के रूप में व्यवस्था में जीते हुए समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक सुखी होना, पूरी परम्परा सुखी होना मानव व्यवस्था के आधार पर जीना संभव हो जाता है। इसीलिए हम यह निर्णय कर सकते है मानव समझदारी पूर्वक ही सफल होता है। समझदारी मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार पूर्वक सर्व सुलभ होना पाया जाता है। इसविधि से हम इस बात पर निर्णय कर सकते है संवाद भी कर सकते है कि जीव संसार शरीर स्वस्थता को प्रमाणित करते है। अपनी आहार पद्धति से विहार पद्धति से, मानव अपने आहार, विहार, व्यवहार पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने की आवश्यकता आ चुकी है। इसलिए हर नर-नारी को सुखी होने के अर्थ में जीना स्वीकार है। इसे सार्थक, सुलभ अथवा सर्वसुलभ होने के अर्थ में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद के अंग भूत व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है।

> ***आदर्शवाद रहस्य से मुक्त नहीं हो पाया और भौतिकवाद संघर्ष से मुक्त नहीं हुआ रहस्यवाद मतभेद से मुक्त नहीं हुआ। संघर्ष, युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह से मुक्त नहीं हुआ। बहुत प्रकार से प्रयत्न तो किया है। मतभेद और संघर्ष से मुक्ति मानव कुल को मिली नहीं। यही आर्तनाद पुनर्विचार का आधार बना।***

समाधान अपने शरीरगत वस्तु है या जीवनगत है ? इस बात की चर्चा भी मानव कुल में प्रासंगिक है। निष्कर्षो को मानव परम्परा में स्थापित करना मानव का उद्देश्य है। भौतिकवाद, आदर्शवाद अपने-अपने तरीके से निष्कर्ष निकालने की कोशिश किए। आदर्शवाद रहस्य से मुक्त नहीं हो पाया और भौतिकवाद संघर्ष से मुक्त नहीं हुआ रहस्यवाद मतभेद से

मुक्त नहीं हुआ। संघर्ष, युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह से मुक्त नहीं हुआ। बहुत प्रकार से प्रयत्न तो किया है। मतभेद और संघर्ष से मुक्ति मानव कुल को मिली नहीं। यही आर्तनाद पुनर्विचार का आधार बना। पुनर्विचार करने से पता चला कि भौतिक और रासायनिक संसार को अध्यात्मवाद ने मिथ्या बता दिया। इसका प्रमाण मिला मानव परम्परा में, रहस्य के प्रति बढ़ता हुआ अनास्था। आस्था का तात्पर्य ना समझते हुए मानने की चेष्टा। ऐसी मान्यता के प्रति प्रतिबद्धता है। इस ढंग से रहस्य के प्रति उदासीनता, संघर्ष के प्रति अस्वीकार हर मानव में दिखाई पड़ता है।

लक्ष्य और दिशा को निर्धारित करने के लिए दो ध्रुव पहचानने में आया विवेक और विज्ञान। ये दोनो ज्ञान मूलक विधि से सार्थक होना पाया गया है। विवेक और विज्ञान अपने में लक्ष्य और दिशा को चिन्हित करने की विधि और प्रक्रिया है। मानव अपने में विवेचना पूर्वक ही लक्ष्य निर्धारित होता है। और विश्लेषण पूर्वक ही दिशा निर्धारित होती है। विश्लेषण में क्रिया गति का निश्चयन होना पाया गया। काल को क्रिया की, वस्तु की अवधि के रूप में पहचाना गया यह भी साथ में पहचाना गया कि हर अवधि संख्या के रूप में होती है। हर संख्या काल, क्रिया, नाप, तौल के रूप में ही पहचानने में आती है। हर प्रयोजनो

> ***विवेक और विज्ञान अपने में लक्ष्य और दिशा को चिन्हित करने की विधि और प्रक्रिया है। मानव अपने में विवेचना पूर्वक ही लक्ष्य निर्धारित होता है। और विश्लेषण पूर्वक ही दिशा निर्धारित होती है। विश्लेषण में क्रिया गति का निश्चयन होना पाया गया।***

में मानव वैभव समाहित रहता है यह जनसंवाद के लिए सहज रूप में प्रासंगिक है । यह प्रसंग पूरा सहअस्तित्व की अभिव्यक्ति है, सम्प्रेषणा है, और प्रकाशन है । सहअस्तित्व के अतिरिक्त प्रकाशन का आधार ही नहीं है । इसलिए हम मानव सार्थक संवाद पूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रूपी तथ्यो को परस्परता में बोधगम्य, अध्ययन गम्य और कार्य-व्यवहार-आचरणगम्य होने के अर्थ में सार्थक होना देखते है । इसे हर समझदार नर-नारी सार्थक बनाने योग्य है ही । समझदारी का दावा किसी न किसी विधि से हर मानव करता ही है । समझदारी का प्रमाण मानवाकांक्षा रूपी अथवा मानव लक्ष्य रूपी समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व ही है । इसके आधार पर मानव का वैभव धर्म अर्थ और राज्य का संयुक्त रूप में वैभवित होना सहज है ।

> ***आस्वादन ज्ञान मूलक विधि से सम्बंधो में निहित मूल्यों और मूल्यांकन के रूप में फलतः परस्पर तृप्ति के रूप प्रमाणित होना पाया जाता है। यह सब अपने अपने मे गवाहित हैं । आस्वादन की क्षमता निरन्तर बनी ही रहती है। इसी प्रकार साक्षात्कार, बोध, अनुभव में भी निरन्तरता का होना देखा गया है । मूलतः अनुभव सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में सम्पन्न होता है ।***

वैभव के मूल में समझदारी और जागृति ही अति प्रमुख स्रोत है। यह सार्थक संवाद के लिए अनुपम मुद्दा है । जागृति और समझदारी अविभाज्य है। समझदारी अपने में ज्ञान, विज्ञान, विवेक के रूप में कारगार होने की स्थिति चर्चा में आ चुकी है । ज्ञान, विज्ञान, विवेक का संयुक्त नाम है समझदारी। विवेक और विज्ञान के मूल में ज्ञान ही प्रधान वस्तु है । ज्ञान अपने स्वरूप में सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति है । ज्ञान होने के लिए ज्ञाता की पहचान होना

जरूरी है । ज्ञाता अपने स्वरूप में जीवन होना पाया जाता है । जीवन अपने स्वरूप में गठनपूर्ण परमाणु अक्षय बल अक्षयशक्ति सम्पन्न है। जो आशा विचार, इच्छा, संकल्प, और प्रमाणो को प्रमाणित करने योग्य क्षमता सम्पन्न है। यही अक्षय शक्ति है। इसी क्रम में अनुभव बल, बोधबल, साक्षात्कार बल, तुलनबल, आस्वादन बल के रूप में परीक्षित हो चुके है । ये पांचो बल प्रत्येक मानव जीवन में गवाहित होते है। आस्वादन ज्ञान मूलक विधि से सम्बंधो में निहित मूल्यों और मूल्यांकन के रूप में फलतः परस्पर तृप्ति के रूप प्रमाणित होना पाया जाता है। यह सब अपने अपने में गवाहित हैं । आस्वादन की क्षमता निरन्तर बनी ही रहती है। इसी प्रकार साक्षात्कार, बोध, अनुभव में भी निरन्तरता का होना देखा गया है । मूलतः अनुभव सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में सम्पन्न होता है । इसलिए सहअस्तित्व को परम सत्य के रूप में पहचान गया है। इसकी निरन्तरता अर्थात अनुभव की निरन्तरता सदा बनी रहती है सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व निरन्तर है ही। इसे हर व्यक्ति सार्थक संवाद से बोध तक सार्थक होना संभव है। यह प्रक्रिया मानव में, से, के लिए परम आवश्यक है।

> ***सत्य और ज्ञान को रहस्यमयी वस्तु मानते ही आये । रहस्यमयी मान्यता के आधार पर सत्य, धर्म, वादग्रस्त होता रहा । धर्म के संदर्भ में धर्म के लक्षणों को बताकर उद्देश्य का आधार बताया । रहस्य से मुक्ति मानव की अपेक्षा बनी ही रही । सत्य धर्म न्याय की अपेक्षा मानव परम्परा में बनी ही रही, भले ही चिंन्हित रूप में स्पष्ट नहीं हो पायी ।***

सत्य में अनुभूत होना अनुभव सहज प्रमाणों को प्रमाणित करना ही जागृति है यही परम सत्य है । सत्य की परिकल्पना,

योग से रासायनिक वैभव स्पष्ट हो चुकी है। रासायनिक वैभव का नियति प्राण सूत्र - प्राण कोषा और प्राण कोषा से रचित रचनाएँ जैसे प्राणावस्था (वनस्पति संसार) जीवावस्था तथा मानव शरीर ही है। मानव ही सभी प्रकार की शरीर रचनाओ का अध्ययन करने में निष्णात होना चाहता है। यह मानव की सहज प्रवृति है। मानव शोध, अनुसंधान, प्रयोग पूर्वक परम्परा में प्रमाणों को समाहित करने का इच्छुक होना पाया गया है। इस क्रम में अभी तक किये गये वैज्ञानिक तथ्यों मे सार उपलब्धि जो मानव के हाथ लगी है वह दूर-दर्शन, दूर-श्रवण,दूर-गमन है। इन सबका सकारात्मक भाग समाज गति के लिए उपयोग करना मानव परम्परा की गरिमा है। मानव इन अद्भूत उपलब्धियों को नकारात्मक पक्ष में जो उपयोग प्रयोग किया है वह सामरिक तंत्र ही है। सामरिकता के जितने भी यंत्र-उपकरण बने सब मानव की बर्बादी का द्योतक है। यही आजादी का रास्ता अभी तक हुआ नहीं है। परिपूर्ण होने के लिए सहअस्तित्व ज्ञान विज्ञान, विवेक परम आवश्यक है। इन सबका विधिवत अध्ययन करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद प्रस्तुत हुआ है। इस नजरिया से परस्परता में संवाद सुलभ होने के लिए यह व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है।

> ***चाहत और सम्भावना का संयोग योग बिन्दु में ही शुभ परम्परा का उद्‌गम है। इसका प्रमाण रूप शिक्षा-संस्कार में मानव की पहचान, मानव की पहचान का मतलब मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान और मानवीयता पूर्ण आचरण को बोधगम्य कराना ही है। इस क्रम में मूल सूत्र ''त्व सहित व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी'' ही है।***

संवाद मानव परम्परा में एक सहज कार्य है। इसमें कहीं न

कहीं सर्वशुभ की कामना समायी रहती है। सर्व शुभ घटनाएँ घटित होने के उपरांत मानव परम्परा स्वयं शुभ परम्परा के रूप में प्रमाणित होने की सम्भावना बनी ही है। मानव में चाहत भी बनी है। चाहत और सम्भावना का संयोग योग बिन्दु में ही शुभ परम्परा का उद्‌गम है। इसका प्रमाण रूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार में मानव की पहचान, मानव की पहचान का मतलब मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान और मानवीयता पूर्ण आचरण को बोधगम्य कराना ही है। इस क्रम में मूल सूत्र ''त्व सहित व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी'' ही है। मानवत्व अपने में जागृति के रूप में सुस्पष्ट है। जागृति अपने में समझदारी का स्वरूप होना स्पष्ट हो चुकी है। समझदारी अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व होना स्पष्ट हुआ। इसी क्रम में अर्थात जागृति क्रम मे मानव परम्परा का वैभव, मानवत्व सहित महिमा, परिवार में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण, विश्व परिवार व्यवस्था तक सोपानीय क्रम मे प्रमाणित होना है। इसी विधि से मानव संबंध और प्राकृतिक संबंध संतुलन होना पाया जाता है। नियति विरोधी, प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी गति विधियो से मुक्ति पाने का उपाय भी यही है। हर मानव विरोधो से मुक्ति पाना चाहता ही है। इसी तथ्यवश इसकी संभावना सुस्पष्ट

> ***व्यापक वस्तु अपने में पारगामी, पारदर्शी के वैभव से सम्पन्न है, क्योंकि परस्परता में एक दूसरे को पहचानना संभव है ही। इसी प्रकार सभी इकाइयों में पारगामी होना हर वस्तु के उर्जा सम्पन्न होने के रूप में प्रमाणित है, इसीलिए व्यापक वस्तु का नाम साम्य उर्जा भी है, उर्जा सम्पन्नता का फलन है बल सम्पन्नता और क्रियाशीलता।***

सभी को भागीदार होने की आशा अपेक्षा और कर्तव्य है । इसी आशय को सार्थक संवाद में, अवगाहन में लाने का यह प्रयास है ।

अखंडता और सार्वभौमता के वर्चस्व का धारक वाहक केवल मानव ही है। ऐसी अखंडता और सार्वभौमता की पहचान के पूर्व जानने मानने के अर्थ को स्पष्ट कर लें। मानव में ही जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की क्रियाकलाप परम्परा में स्पष्ट हो जाती है या प्रमाणित हो जाती है। जाने बिना मानना रूढ़िवादिता के रूप में स्पष्ट है। जानते हुए नहीं मानना एक अन्तर्विरोध अथवा का स्वरूप होना पाया गया है। इसलिए यह समझ में आता है जानना, मानना मानव-परम्परा में, से, के लिए एक अनिवार्य क्रिया है । जानना मानना ही प्रमाण का आधार बनता है। प्रमाण क्रियान्वयन होने की स्थिति में पहचानना, निर्वाह करना भी होता है। प्रमाण किसके साथ प्रस्तुत होना है इस का पहचान होना आवश्यक है । इस विधि से सर्वमानव मानव के साथ ही जानने मानने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह प्रमाण समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही होता है जिसके फलस्वरुप में सुख, शान्ति, सन्तोष, आनन्द होना पाया जाता है। अनुभव धारक ही वाहकता का स्रोत है। अनुभवमूलक विधि से ही अखंडता और सार्वभौमता का प्रमाण होना पाया जाता है। इसकी स्वीकृति अनुभव के पहले

जाने बिना मानना रूढ़िवादिता के रूप में स्पष्ट है । जानते हुए नहीं मानना एक अन्तर्विरोध का स्वरूप होना पाया गया है । इसलिए यह समझ में आता है जानना, मानना मानव-परम्परा में, से, के लिए एक अनिवार्य क्रिया है । जानना मानना ही प्रमाण का आधार बनता है । प्रमाण क्रियान्वयन होने की स्थिति में पहचानना, निर्वाह करना भी होता है ।

से ही मानव में सर्वेक्षित हुई है । इसे प्रत्येक व्यक्ति कर भी सकते है। हर निश्चयन निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण की सहज प्रक्रिया से ध्रुवीकृत होता है और निश्चित होता है । यह निश्चित बात है कि निश्चयता में ही मानव जीना चाहता है । अनिश्चयता मानव को स्वीकृत नहीं है। भ्रम की स्थिति में भी निश्चयता की अपेक्षा मानव में, से, के लिए निहित रहती ही है। निश्चयपूर्वक ही मानव धरती पर चल पाता है। हवा पर चलता है और पानी पर चलता है। इसी प्रकार अन्य गतियों मे भी निश्चयता की अपेक्षा बनी हुई है । निश्चयो के साथ ही जानने मानने का प्रयोजन प्रमाणित होता है ।

धरती पर चलने के पहले से ही धरती की स्थिरता धरती पर निहित मानव को ज्ञात रहती है। प्रयोग से सुदृढ़ होती जाती है । इसी प्रकार हवा पर, जल पर चलने के तरीकों को मानव अपना चुका है। हवा पर चलने के लिए हवा की सांद्रता को बढ़ाने और सांद्रता की अपेक्षा में यान गति को अधिक बनाए रखने के उपायों को मानव अपना चुका है। इन उपायो के साथ साथ मानव वायुयान तंत्र को सर्वसुलभ कर चुका है । प्रमाणित कर चुका है । इसी प्रकार जल सान्द्रता की अपेक्षा में जलयान गतियों की स्थिति को बनाए रखने के उपायों को मानव अपना चुका है। जल सान्द्रता पर तैरने का तरीका, वस्तु और आकार प्रकार विधियो मे पारंगत हो

स्थिरता क्रिया की निरन्तरता के रूप में पहचानी जाती है, निरन्तरता ही स्थिरता है । हर क्रिया अपने में निरन्तर है ही, उसके साथ यह भी समझने की आवश्यकता है कि हर एक एक अपने यथा स्थिति के अनुसार स्थिर है । इसका प्रमाण निश्चित आचरण है । व्यापक वस्तु भी स्थिर रूप में ही व्याख्यायित होती है ।

समाधान सह-अस्तित्व सहज और जीवन सहज दर्शन व प्रमाण है। ऐसा दर्शन जानने मानने के रूप में पहचाना गया है। जानने मानने वाली इकाई मानव ही है। इस प्रकार जानना मानना समझदारी के अर्थ में विज्ञान और विवेक के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। ज्ञान, विज्ञान, विवेक की सार्थकता की चर्चा पहले हो चुकी है। समझदारी ही ज्ञान है। यह सब शिक्षा विधि से बोधगम्य होना पाया जाता है। अनुभवमूलक विधि से ही मानव सहज लक्ष्य और दिशा को निर्धारित करना सहज होता है। हर मानव अथवा हर नर-नारी लक्ष्य और दिशा को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के लिए इच्छुक है। इसी कारणवश हर मानव अपने में समझदार होने के लिए आवश्यकता बनाये है।

समझदारी ध्रुवीकरण होना, समझदारी निश्चित होना अभी तक विचाराधीन रहा है। मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद के अनुसार अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में समझदारी ध्रुवीकृत हो जाती है। ध्रुवीकरण का तात्पर्य समझदारी का बोध और अनुभव होने से है। अध्ययनपूर्वक बोध होना, बोधगम्य समझदारी प्रमाणित करने के अर्थ में अनुभव होना पाया जाता है। इस विधि से प्रत्येक मानव अध्ययन पूर्वक समझदारी से सम्पन्न होना संभव हो गया है। इसे सर्वसुलभ करने के क्रम में यह व्यवहारात्मक जनवाद मानव के सम्मुख प्रस्तुत है।

व्यवहारात्मक जनवाद का तात्पर्य समझदारी पूर्ण विधि से संवाद पूर्वक व्यवहार को ध्रुवीकरण करने की सम्पदा का समावेश हो, और प्रमाणित हो। समावेश होने का तात्पर्य मानव सहज विधि से अनुभवगम्य होने से है और स्वीकृत होने से है। इस क्रम में सदा-सदा से मानव परम्परा समझदार होने की अभीप्षा प्रमाणित होना सहज है।

व्यवहारात्मक जनवाद का तात्पर्य समझदारी पूर्ण विधि से संवाद पूर्वक व्यवहार को ध्रुवीकरण करने की सम्पदा का समावेश हो, और प्रमाणित हो। समावेश होने का तात्पर्य मानव सहज विधि से अनुभवगम्य होने से है और स्वीकृत होने से है। इस क्रम में सदा-सदा से मानव परम्परा समझदार होने की अभीप्षा प्रमाणित होना सहज है। इसकी आवश्यकता प्राचीनकाल से ही रही है। मानव अपने को सदा से ही अपनी पहचान बनाने के क्रम में प्रमाणित है ही। यह प्रमाण भले ही सर्वभौम न हुआ हो, यह विचारणीय मुद्दा तो है ही। साथ में हर समुदाय में हर मानव श्रेष्ठता के अर्थ में प्रयत्नशील रहे आया इसी का देन है। हम मानव मनाकार को साकार करने में सार्थक हो गये है। इसी के साथ में मन:स्वस्थता की पीड़ा बलवती हुई है। इसी आधार पर अनुसंधान, शोध स्वाभाविक रहा। मानव में समस्या की पीड़ा होना स्पष्ट है अर्थात पीड़ा स्वयं भ्रम का ही प्रकाशन है। भ्रमित मानव समस्या के रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है। जब तक शिक्षा परम्परा भ्रमित हो राज्य और धर्म परंपरा भ्रमित हो, ऐसी स्थिति में शोध की दिशा और लक्ष्य समझ में आना काफी जटिल होता है। इसके बावजूद पीड़ा की किसी पराकाष्ठा में अज्ञात को ज्ञात करने का लक्ष्य बन गया। इसके लिये अनुमान से ही दिशा को निर्धारित किया गया। इसी क्रम में मध्यस्थ दर्शन और सहअस्तित्ववादी उपलब्धि मानव के सम्मुख प्रस्तुत हो गया। यह मानव की ही आवश्यकता रही इसीलिये यह घटना घटित हो गई।

समाधान चाहिए ही। व्यवहार में समाधान को प्रमाणित करना ही प्रमुख लक्ष्य है। समझदार के साथ समझदार का व्यवहार समाधानित होना स्वाभाविक है। जो समझदार नहीं है उनके साथ एक समझदार मानव का व्यवहार काफी अड़चनों को समाधानित होना देखा गया है। किन्तु समाधान का पराभव नहीं होता है।

मानव के सम्मुख समस्याएँ पीड़ा के रूप में पहुंचती है, पीड़ा के रूप में प्रभावित होती है। भ्रमवश, प्राकृतिक प्रकोपवश, जीवो के आचरण वश पीड़ा, दुःख, रोग, भय भ्रम होना पाया जाता है। यह सब प्रकारांतर से पीड़ा ही है, समस्या ही है। मानव मानव के साथ व्यवहार में व्यतिरेक वश ,जो पीड़ाएं, समस्याएं होती है वे भ्रमवश ही होती है। भ्रमवश सभी कृत्यों के मूल में करने वाला अपने को ठीक करना ही माना रहता है। इसके परिणाम में अनेक लोगों के बीच में समस्याएं बढ़ जाती है।

हर समुदाय की मान्यता अपने आचरणों को श्रेष्ठ मानते ही आयी है। श्रेष्ठता का ध्रुव बिन्दु सर्व स्वीकृति के रूप में तैयार नहीं हो पाया। ऐसे ध्रुव बिन्दु के अर्थ में ध्रुव बिन्दु को पहचानना समझना, व्यवहार मे प्रमाणित करना जन चर्चा का एक प्रधान मुद्दा रहा।

मानव के भ्रमित रहने का मूल कारण परम्परा जागृत न रहना ही है। परम्परा का स्वरूप प्रधान रूप में शिक्षा-संस्कार, राज्य व्यवस्था, धर्म व्यवस्था है। हर मानव का आचरण परम्परा के अनुसार ही रहा है। परम्पराएं किसी न किसी अंतिम मान्यता अथवा मान्यता के आधार पर ही होना स्पष्ट है। सन् 2000 तक में सभी समुदाय परम्पराएं अपने-अपने ढंग की मान्यताओं के अनुसार आचरण

को स्वीकारा है। हर समुदाय की मान्यता अपने आचरणों को श्रेष्ठ मानते ही आयी है। श्रेष्ठता का ध्रुव बिन्दु सर्व स्वीकृति के रूप में तैयार नहीं हो पाया। ऐसे ध्रुव बिन्दु के अर्थ में ध्रुव बिन्दु को पहचानना समझना, व्यवहार मे प्रमाणित करना जन चर्चा का एक प्रधान मुद्दा रहा।

जनचर्चा में अभी भी इन बातो पर कभी कभी चर्चाएं हुआ करती है, इसका निष्कर्ष यही सुनने में आता है पाँच उँगलियाँ एक सी नहीं होती है सभी झाड़ एक से नहीं होते इसलिए अपने अपने ढंग से आचरण रहेगा ही। इसी को मानव में विविधता के अर्थ में स्वीकारा गया है साथ में यह भी चर्चा में आता है कि विविधता में एकता का पहचान जरूरी है। ऐसे संवाद आगे बढ़कर राज्य और संविधान के पास हो जाते है। राज्य संविधान सबको समान रूप में स्वीकार्य है। इसी को एकता के रुप में पहचानने का मूल तथ्य माना गया है। इसी बीच संविधान में प्रावधानित सभी धर्मो के प्रति एक रवैया को धर्म निरपेक्षता का नाम भी दिया ऐसे मान्यताओं पर आधारित संविधान के तले जीता हुआ हर सामान्य मानव में किसी न किसी समुदाय चेतना स्वीकृति, प्रतिबद्धता को सर्वाधिक प्रभावशाली देखा गया है न कि संविधान में प्रावधानित मानसिकता को। इस क्रम में अनेकता में पहचानी

अनेकता में पहचानी गई एकता खतरनाक होना देखा गया है। यह सर्वाधिक लोगो को विदित है निष्कर्ष यह निकला कि अनेकता में एकता का सूत्र रहता नहीं है यदि रहता है तो वह अति प्रच्छन्न होना देखा गया है। मानव परम्परा में मानवीयता ही एक मात्र एकता का सूत्र है।

मानव का मूलरूप प्रवृतियों के आधार पर

मानव, मानव के साथ जो भी करता रहा उसका व्यवहार नाम हुआ और मानवेतर प्रकृति के साथ जो किया वह सब उत्पादन कार्य कहलाया। व्यवहार व उत्पादन कार्यो का निश्चित, चिन्हित क्षेत्र स्पष्ट हो गया है। जितनी भी समस्याएँ उत्पादन विधा में बनी रही उनका निराकरण उपाय खोजते रहे और मानव की आवश्यकताओं के आधार पर वस्तुओं का निर्माण कार्य किये जैसे आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन वस्तुओं का मानव निर्बाध रूप से उत्पादन करने योग्य हो गये। इस क्रम में मानव अपने आश्वस्ति की जगह पहुंचने तक इन प्रौद्योगिकी विधाओं में प्रयुक्त ईंधन से उर्जा ग्रहण किये और उसके अवशेष धरती, जल और वायु को प्रदूषित कर दिया। वायु प्रदूषण का प्रबल प्रभाव धरती के वातावरण के शतांश में से तीस अंश को घटा दिया अथवा धरती के जितनी ऊंचाई में वातावरण फैला रहा, उसमें से सौ में से तीस भाग घट गया। यह सब विज्ञान विधा से प्रस्तुत वक्तव्य है। इस विधि से घटित सम्पूर्ण प्रदूषण मानव त्रासदी का प्रधान कारण हो गया है। इसमें से प्रधान कारण ईंधन अवशेष ही रहा। इससे अनेक विपदाएँ धरती के सिर पर मँडराने लगी, इसके फल स्वरूप धरती ही ताप ग्रस्त हो गई। धरती का ताप विगत

> ***मानव, मानव के साथ जो भी करता रहा उसका व्यवहार नाम हुआ और मानवेतर प्रकृति के साथ जो किया वह सब उत्पादन कार्य कहलाया। व्यवहार व उत्पादन कार्यो का निश्चित, चिन्हित क्षेत्र स्पष्ट हो गया है। जितनी भी समस्याएँ उत्पादन विधा में बनी रही उनका निराकरण उपाय खोजते रहे।***

दशक के मध्यकाल तक शान्त रहा अर्थात पहले जैसा था वैसा ही रहा, अर्द्धदशक के बाद ताप बढ़ने के संकेत विशेषज्ञो को मिलने लगे। इसी बीच नदी, नाला, तालाब का पानी मानव उपयोगी नहीं रहा। फसल की स्वस्थता के भी प्रतिकूल हुई, फसल भी रोगी हुई। ऐसे प्रदूषित आहार से मानव कुल को अनेक प्रजाति के रोग पीड़ाएँ हो गई। मानव के लिए समुद्र के अतिरिक्त जो क्षेत्रफल है वह कम हुआ। इसी क्रम में धरती पर वन वनस्पतियाँ रही उसका सर्वाधिक शोषण होता ही रहा। आगे चलकर खनिजो के दोहन से धरती असंतुलित होने लगी। यह असंतुलन अपने आप में सर्वाधिक खतरनाक होना पाया जा रहा है।

धरती असंतुलित होने का तात्पर्य धरती पर ऋतुओं का असंतुलन है। ऋतुओ का तात्पर्य शीत, ताप, वर्षा और उसके अनुपात से है। साथ में भूमध्य रेखा से उत्तर-दक्षिण क्षेत्रो में परम्परागत अनुपात से विचलित होने से है। ऐसे असंतुलन को प्रकारान्तर से सभी मानव विभिन्न भाषाओं से संवाद में प्रस्तुत करते रहे।

ऋतु असंतुलित होने से निश्चित भू-क्षेत्रों में होती हुई फसल चक्र बिगड़ने से कृषि के प्रति उदासीनता छा गई अथवा कृषि का व्यापारीकरण हो गया। कुछ लोग अभी भी कहते हैं कृषि उद्योग। विचारणीय मुद्दा यही है कृषि में मानव का सहज श्रम, धरती की उर्वरता, ठंडी, गर्मी, पानी का संयोग और हवा बयार के संयोग से फसल होते देखा गया। ऐसे पावन कृत्य धीरे धीरे उदासीनता के पक्ष में हुए।

अन्ततोगत्वा सर्वाधिक कृषक कृषि से विमुख होने के लिए परिस्थिति बाध्य हो गये। इन तथ्यों को सर्वेक्षण पूर्वक पता लगा

आहार की उपलब्धि प्रथम रही। इस मुद्दे में सन्तुष्टि पाने के लिए पत्ते, कन्द, मूल जीव जानवरों की हत्या कर माँस सेवन से कृषि पूर्वक अनाजो की उपलब्धि तक पहुंचे। शनैः शनैः पत्ते कन्द मूल सेवन की प्रथा सर्वाधिक उन्मूलन हो गयी, जहाँ तक जीव जानवरों को हत्या कर मांस-भक्षण की परम्परा यथावत बनी ही है। इसमें परिवर्तन यही हुआ है पहले जंगली जानवरो पर निर्भर रहे अब सर्वाधिक पालतू जीव जानवरो को मारकर मांस प्राप्ति की विधि को अपना चुके है। इस विधि से मानव शाकाहार मांसाहार के पक्ष में अपनी रूचि की मानसिकता को तैयार कर लिया।

इस बीच विज्ञान युग का अपनी पूरी ताकत से प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए विज्ञान की जब शुरूआत हुई तब विज्ञान मानसिकता मन्दिर गिरजाघर की मानसिकता के अनुकूल नहीं रही। इसीलिए सर्वाधिक मन्दिर गिरजाघर विज्ञान को नकार दिये। जब तक यह परम्परा रही कि राजा धर्मगद्दी धारी व्यक्ति की सहमति से राज्य व्यवस्था को सम्पन्न करते थे तब तक धर्मगद्दी की कट्टरता अतिरूढ़ थी। इन विरोधी मानसिकताओं में जो कुछ भी विज्ञान शिक्षा के प्रस्ताव आते रहे, उन सबका खंडन और दंड तक पहुँचा। तब विज्ञानियों ने अपने विवेक से राजाओ को समझाया कि आपको युद्ध करना ही है। युद्ध व्यवस्था रखना ही है। तो विज्ञान आपको सामरिक सामग्री उपलब्ध करायेगा। पहले ही एक राजा दूसरे राजा पर विजय पाने की इच्छा रखता था इस आधार पर राजा लोग सहमत हो गये। विज्ञानियों को संरक्षण देने का उद्देश्य बनाया। इसी बिन्दु से राज्य और धर्म गद्दी का अलगाव होना शुरू हुआ। इस क्रम में विज्ञान अपने प्रयोगो के लिए आवश्यक धन को राजगद्दी से प्राप्त करते रहे। सामरिक तंत्र की तीव्रता को प्रमाणित

करने का प्रयोग तेज होता गया। इसी क्रम में कई वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन मानस अपनाने को तैयार हुआ। दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, दूर-गमन, के रूप में यंत्र उपकरण सर्वसुलभ हुए। इन सबको मानव ने उपयोग करना शुरू किया। इसके अतिरिक्त कृषि संबधी उत्पादन में एवं आवासीय संरचनाओं में उपयोगी वस्तुओ को भी तैयार कर लिए। इसी क्रम मे अलंकार संबधी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने लगी। विज्ञान अपने वर्चस्व को उक्त सभी विधाओ में स्थापित कर लिया। मानव इन सब वस्तुओ को सुखी होने के लिए पाना चाहता है। किन्तु एक व्यक्ति जितना संग्रह कर लेता है उतना सब के पास नहीं होता है। यह भी जनचर्चा का एक मुद्दा है। ये सारी सुविधाएँ सबको कैसे मिल सकती है ? क्या करना होगा ? इसको निर्धारित करना भी एक मुद्दा है। उपलब्ध सभी वस्तुओं से मानव सामान्याकांक्षा, महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओ के प्रति आश्वस्त हुआ। अन्ततोगत्वा सभी वस्तुओ का प्रयोजन शरीर पोषण, संरक्षण, समाजगति के रूप में होना ही निश्चित है। इन तीनो विधाओं में उपयोग करने के उपरान्त वस्तुओं का शेष रहना ही समृद्धि है। तभी मानव उपकार कार्य करने में प्रवृत होता देखने को मिलता है। उपकार कार्य हर मानव संतान को समर्थ बनाने के अर्थ में सार्थक होता हुआ देखा गया है।

मानव कुल शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति में तृप्त होने का इच्छुक रहा ही है। यही इच्छा पूर्ति नहीं हो पाई क्योंकि संग्रह और सुविधा के अर्थ में सारे वस्तुओ को मूल्यांकित करने की आदत मानव में समावेशित हो चुकी है। संग्रह, सुविधा का तृप्ति बिन्दु को पहचानने के पक्ष में परामर्श करने पर पता चलता है कि इन दोनों का तृप्ति बिन्दु मिलता नहीं।

होने का प्रमाण है। ऐसी प्रतिष्ठा का प्रभाव सहअस्तित्व में प्रमाणित होना सुलभ होता है यही जागृति है। इससे स्पष्ट हो गया कि हम मानव जागृति पूर्वक ही सम्पूर्ण वस्तुओं की उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता को प्रमाणित करते है जिससे तुष्टि बिन्दु अर्थात् समाधान बिन्दु तक पहुंचना सुलभ हो जाता है। इसी सम्पदा के साथ हम सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति सम्पन्न हो जाते है। यह तृप्ति की निरन्तरता का प्रमाण है। तृप्ति समाधान और प्रामाणिकता प्रमाण एक दूसरे के पूरक विधि से क्रियान्वयन होते ही है। यही जागृत मानव परम्परा की पहचान है।

हर व्यक्ति अपने को सार्थक सिद्ध करना चाहता ही है। सार्थकता ही पहचान का आधार है। जिससे सकारात्मक फलन प्रमाणित होते ही रहता है। सकारात्मक फलन का तात्पर्य न्याय और समाधान पूर्वक जीने से और शाश्वत सत्य को प्रमाणित करने से है। यही जागृति पूर्वक जीने का प्रमाण है। यही मानव परम्परा का वैभव भी है।

जागृत मानव ही इस धरती पर मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने के अधिकार से सम्पन्न होते हुए देखने को मिलते है। अधिकार स्वत्व का ही होता है इसके फलन में स्वतंत्रता प्रमाणित होती है। समझदारी स्वत्व रूप में, प्रयोग एवं व्यवहार करने के रूप में अधिकार, इसको सार्थक बनाने के क्रियाकलाप के रूप में, स्वतंत्रता सार्थक होते हुए देखने को मिलती है। हर व्यक्ति अपने को सार्थक सिद्ध करना चाहता ही है। सार्थकता ही पहचान का आधार है। जिससे सकारात्मक फलन प्रमाणित होते ही रहता है। सकारात्मक फलन का तात्पर्य न्याय और समाधान पूर्वक जीने से और शाश्वत सत्य को प्रमाणित करने से है। यही

जागृति पूर्वक जीने का प्रमाण है। यही मानव परम्परा का वैभव भी है। इसी वैभव वश मानव में अखंडता, सार्वभौमता का प्रमाण उदय होता है। जिससे परिवारगत आवश्यकताओं के संयत समृद्ध होने की सम्भावनाएँ अधिक बन जाती है।

भ्रमवश हम मानव यही कहते रहे हैं कि आवश्यकता अनंत है साधन सीमित हैं। इसलिए संघर्ष करना जरूरी है। छीना-झपटी, शोषण ही संघर्ष का रूप हुआ। ऐसे घृणित कार्य करते हुए भी श्रेष्ठता का दावा किया, बेहतरीन जिन्दगी का दावा किया। यह कहाँ तक न्याय हुआ ? इस मुद्दे पर भी जनचर्चा की आवश्यकता है। भ्रमित जन मानस में भी न्याय, धर्म, सत्य की अपेक्षा रूप में स्वीकृति बनी हुई है किन्तु उसी के साथ-साथ परम्परा में इसकी प्रामाणिकता की उपलब्धता नहीं रहने के कारण मानव अपने अपने तरीके से जीवों से अच्छा जीने के स्वरूप को बना लेता है। जीने के क्रम में आहार, विहार, व्यवहार, उत्पादन, कार्य का निश्चयन आवश्यक है। प्रकारान्तर से मानव इसे अनुसरण किये रहता है।

आहार के बारे में पहले ही यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि मानव शाकाहार मांसाहार को पहचान चुका है एवं इनका अभ्यासी भी है। इन दोनो प्रकार के आहार विधा में विविध प्रकार से व्यंजनो को बनाने और व्यंजनों को शोध करने के कार्यक्रमों को कर ही रहा है। इसकी आवश्यकता है कि नहीं, यह भी संवाद का मुद्दा हो सकता है। संवाद आवश्यकता के आधार पर सोचने पर पता चलता है कि मानव के निश्चित आचरण को पहचानना आवश्यक है। आचरण का निश्चयन इसीलिए अपरिहार्य हो गया है कि मानव अपने में बहुमुखी अभिव्यक्ति है, दूसरी भाषा में सर्वोतोमुखी अभिव्यक्ति है। व्यक्त होने के क्रम में आचरण रहता ही है। मानव

में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन और दिशा बोध होना ही प्रधान मुद्दा है। इन मुद्दो पर संवाद होना आवश्यक है।

जीवन और शरीर अलग-अलग महिमा सम्पन्न इकाई होते हुए इनकी अभिव्यक्ति में निरन्तर एक परम्परा का स्वरूप बना ही है। इसी का नाम मानव परम्परा है। मानव परम्परा में शरीर की काल अवधि होती है, और शरीर आयु मर्यादा के आधार पर कार्य मर्यादा को प्रकाशित करता है। हर पीढ़ी आगे पीढ़ी और आगे पीढ़ी पीछे पीढ़ी से ऐसी अपेक्षाएँ बनाए रखती है, आयु के आधार पर ही यह अपेक्षा बनी रहती है। इसकी औचित्यता पर विचार करने से पता लगता है मानव अपने में आयु की महिमा, प्रवृति को स्वीकारे हुआ रहता है।

जीवन और शरीर अलग-अलग महिमा सम्पन्न इकाई होते हुए इनकी अभिव्यक्ति में निरन्तर एक परम्परा का स्वरूप बना ही है। इसी का नाम मानव परम्परा है। मानव परम्परा में शरीर की काल अवधि होती है, और शरीर आयु मर्यादा के आधार पर कार्य मर्यादा को प्रकाशित करता है।

शरीर के साथ आयु मर्यादा की गणना हो पाती है, शरीर परिणाम कारी होना स्पष्ट है। आयु मर्यादा हमेशा प्रभावशील रहता ही है। इसी के साथ कार्य प्रवृतियाँ मेधस तंत्र द्वारा संवेदनशील और संज्ञानशील कार्यक्रमों को स्पष्ट कर देती है। जीवन में ही संवेदनशीलता का, संज्ञानशीलता का आस्वादन हो पाता है। संज्ञानशीलता जीवन का स्वत्व होना पहले से ही सुस्पष्ट हो चुका है। समझदारी अर्थ स्वीकृति के साथ जीवनगत होना, जीवन ही दृष्टा पद में होना इसलिए दृष्टा (जीवन एवं शरीर का संयुक्त रूप में), कर्ता, भोक्ता होना देखा गया है।

हम इस प्रमाण को पहचान सकते है कि जीवन ही दृष्टा है और शरीर को जीवन्तता प्रदान करता है। जीवन्त शरीर में ही संवेदना स्पष्ट होती है। जीवन अपने कार्य, गति, पथ के साथ इकाई होना स्पष्ट हो गया है। कार्य गति पथ के साथ ही जीवन पुंज के मूल में एक गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में होना जिक्र किया जा चुका है। यही जीवन पद है। जीवन पद अपने में संक्रमण क्रिया है। संक्रमण का तात्पर्य जिस अवस्था पद प्रतिष्ठा में पहुँच चुके उससे पीछे की स्थिति मे नहीं जा पाना। यह भी एक स्वयं स्फूर्त स्थिरता का प्रमाण है। जीवन पद में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त रसायनिक भौतिक क्रियाकलाप का दृष्टा हो जाता है। जीवन अपने में रासायनिक भौतिक क्रियाकलापो से अछुता रहते हुए रासायनिक भौतिक द्रव्य से रचित शरीर को जीवन्त बनाये रखना जीवन को स्वीकृत है।

जीवन्त शरीर में ही संवेदना स्पष्ट होती है। जीवन अपने कार्य, गति, पथ के साथ इकाई होना स्पष्ट हो गया है। कार्य गति पथ के साथ ही जीवन पुंज के मूल में एक गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में होना जिक्र किया जा चुका है। यही जीवन पद है। जीवन पद अपने में संक्रमण क्रिया है।

जीवन की स्वीकृति अपने में निरन्तर बनी ही रहती है। इसी क्रम में हर जीवो को वंशानुषंगी शरीर क्रिया के अनुसार जीवंत बनाये रखता है। अर्थात संवेदनशीलता का प्रमाण प्रस्तुत कर देता है। ऐसे ही संवेदनाओं को प्रमाणित करने के क्रम में अलग-अलग पहचान उन उन के आचरणो के रूप में प्रस्तुत हो गई है।

तृप्ति की अपेक्षा में ही संजोया हुआ पाया जाता है । सभी मानव संवेदनशीलता से परिचित है ही, संज्ञानशीलता की आवश्यकता शेष रही ही है । समस्या समाधान के क्रम में प्रदूषण के संबंध में सोचना और निष्कर्ष निकालना हर मानव का कर्तव्य बन गया है । क्योंकि इससे उत्पन्न विपदाएँ हर मानव के लिए त्रासदी का कारण बन चुकी है । इससे उत्पन्न विपदाएँ हर मानव के लिए त्रासदी का कारण बन चुकी है । इससे मुक्ति पाना हर मानव के लिए आवश्यक है । वन, खनिज, औषधि संपदाए समृद्ध रहने की स्थिति में ऋतु संतुलन, वन वनस्पति औषधियों के अनुकूल रूप में परिणीत होने के उपरान्त मानव का अवतरण धरती पर आरंभ हुआ है । और मानव अपने तरीके से सोचते समझते मनाकार को साकार करने के क्रम में वन, खनिज, औषधि, जलवायु संपदा को उपयोग, प्रयोग, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक इनके साथ अपनी अनुकूलता के लिए प्रयोग करता ही आया । इस क्रम में सर्वाधिक वनों का विध्वंस और खनिजों का शोषण होना पाया गया ।

सही अध्ययन मानते हुए शुरूआत से अभी तक विज्ञान सम्मान पाया है । जनमानस में अर्थात जो विज्ञानी नहीं है उनमें विज्ञान का सम्मान स्थापित हुआ । इसके बावजूद वन खनिजों का विध्वंस, खनिज के शोषण को नियति विरोधी होना पहचान नहीं पाया । ईंधन को हम वन से, खनिज कोयला से, और विकरणीय धातुओं के आवेशन प्रणाली से प्राप्त किये । इसी का अवशेष प्रदूषण के लिये सम्पूर्ण कारण बन पड़ा है । यह भी एक मुद्‌दा है जनचर्चा है कि इससे विज्ञान संसार चिन्तित होने की आवश्यकता है कि नहीं ? इस मुद्‌दे पर विस्तृत विचार संवाद की आवश्यकता है ही । यह तथ्य हमें समझ में आया है कि मानव अज्ञानी हो, मुर्ख हो, किन्तु

सामान्य ज्ञान से संपन्न रहता है । ऐसा सामान्य ज्ञान संवेदनशीलता की पहचान के रूप में गवाहित रहता है । ऐसे व्यक्ति भी किसी आपदाओं को स्वीकार नहीं पाते, तथा इसके निवारण का उपाय भी सुझ में आना चाहिये । मानव का संवाद परस्परता में अभ्यस्त होते होते तर्क सुलभ कर ही लेता है । क्योंकि हर मानव में संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता का झलक बना ही रहता है । इसी आधार पर तर्क अपने आप से संवेदनशीलता के ढांचे-खांचे में पहुंच ही जाते है । इसी क्रम में हर मानव में इस तथ्य को चर्चा में लाने का अपेक्षा होना, प्रयास होना आवश्यक है ।

प्रदूषण का मूल रूप ईंधन अवशेष तभी रूक सकता है जब ईंधन अवशेषवादी द्रव्यों का प्रयोग बंद कर दिया जाय । इसमें सर्वप्रथम खनिज कोयला तेल को बंद करना परम आवश्यक है । इसके बाद या इसी के साथ विकरणीय द्रव्यों का आवेशण से प्राप्त करने वाली उष्मा पद्धतियों को सर्वथा त्याग देना चाहिए । क्योंकि जितने भी विकिरणीय प्रदार्थ है वे सब ब्रम्हाडीय किरणों के रूप में कार्यरत रहने के लिये बने है । ब्रम्हांडीय किरणें सदा-सदा रसायनिक भौतिक क्रियाओं को सुदृढ़ और क्रमिक विकास से जोड़ने का अनुपम कार्य करती रहती है । इसको समझने की आवश्यकता है ।

जितने भी विकिरणीय प्रदार्थ है वे सब ब्रम्हाडीय किरणों के रूप में कार्यरत रहने के लिये बने है । ब्रम्हांडीय किरणें सदा-सदा रसायनिक भौतिक क्रियाओं को सुदृढ़ और क्रमिक विकास से जोड़ने का अनुपम कार्य करती रहती है । इसको समझने की आवश्यकता है ।

के अपराधो में न्यूनतम सहभागिता है। गरीब-अमीर, ज्ञानी-अज्ञानी, विद्वान-मूर्ख, बलि-दुर्बली ये चार प्रकार की सविपरीत स्थितियां सुदूर विगत से पहचानने में आई है। क्या इसे यथावत रहने देना है या इसका उपाय खोजना चाहिए। इस पर हमारे सोच विचार को विशाल रूप देने पर तथा सर्वशुभ को ध्यान में लाने पर यह पता लगता है अस्तित्व में इस प्रकार की दूरी का कोई आधार नहीं है। मानव परम्परा में चारो प्रकार से बनी दूरी मानव में, से, के लिए तैयार की गई है। तर्क विधि से जो बना है वह मिट भी सकता है। इस सिद्धान्त का प्रयोग मानव के साथ जुड़ा हुआ दिखाई देता है। अतएव मानव ही इसे दूर करने में समर्थ है क्योंकि मानव ही इसका कारण होना स्पष्ट हो गया है। इस बात को हम भली प्रकार से समझ चुके है। ज्ञान विद्धता को लोक व्यापीकरण करने के क्रम में उनकी दूरियां समाप्त होना स्वाभाविक है। सह-अस्तित्ववादी विधि से ज्ञान और विद्वता का लोक व्यापीकरण का प्रमाण ही हर परिवार समाधान, समृद्धि सम्पन्न होना।

> *गरीब-अमीर, ज्ञानी-अज्ञानी, विद्वान-मूर्ख, बलि-दुर्बली ये चार प्रकार की सविपरीत स्थितियां सुदूर विगत से पहचानने में आई है। क्या इसे यथावत रहने देना है या इसका उपाय खोजना चाहिए। इस पर हमारे सोच विचार को विशाल रूप देने पर तथा सर्वशुभ को ध्यान में लाने पर यह पता लगता है अस्तित्व में इस प्रकार की दूरी का कोई आधार नहीं है*

इससे गरीबी अमीरी की दूरी समाप्त होना स्वाभाविक है। चौथा मुद्दा बली दुर्बली की बात आती है, इस मुद्दे पर समझदार मानव परिवार होने के उपरान्त दुर्बल के साथ दया पूर्वक व्यवहार करने का आवश्यकता आता ही है। कोई दुर्बली होता है वह भी किसी

परिवार मे होता है अन्य के साथ उसका सम्बन्ध बना ही रहता है। हर समझदार परिवार में आयु, स्वास्थ्य विविधता रहती ही है। आयु अपने में नियतिक्रम वर्तमान है ही। अभी तक मानव द्वारा अपने अपने समुदाय परिवार व्यक्ति के संदर्भ में संग्रह सुविधा को एकत्रित करने के लिए नौ प्रकार की गलतियाँ किया जाना देखा जा रहा है। इसलिए स्वास्थ्य विधा में जब तक प्रकृति अर्थात वन, खनिज, औषधी, द्रव्य वनस्थ जीवों और जीवों में सन्तुलन और ऋतु संतुलन पुनः उदय होने तक बली दुर्बली की सम्भावना बनी रहती है। इसका निराकरण समाधान समृद्धि पूर्वक जीने वाली परिवार व्यवस्था और समाधान समृद्धि अभय सम्पन्न अर्थात वर्तमान में विश्वास सम्पन्न अखण्ड समाज व्यवस्था और समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व पूर्वक जागृत परम्परा को प्रमाणित करने वाली व्यवस्था प्रमाणित होने पर ही संभव है। इन सभी तथ्यों को हृदयंगम करने के लिए सकारात्मक पक्ष में दृढ़ मानसिकता के रूप में जनचर्चा और संवाद एक आवश्यक कार्यक्रम है। यह सब जागृत परम्परा की महिमा है। जागृत परम्परा में हर मानव की परस्परता न्याय और विश्वास सूत्र से जुड़ी रहती है। न्याय सूत्र का मतलब परस्पर सम्बंधो की पहचान, निर्वाह, उसकी निरन्तरता ही है। ऐसी निरन्तरता विश्वास नाम से ख्यात है। ऐसी स्थिति हर मानव के लिए

> *मानव द्वारा अपने अपने समुदाय परिवार व्यक्ति के संदर्भ में संग्रह सुविधा को एकत्रित करने के लिए नौ प्रकार की गलतियाँ किया जाना देखा जा रहा है। इसलिए स्वास्थ्य विधा में जब तक प्रकृति अर्थात वन, खनिज, औषधी, द्रव्य वनस्थ जीवों और जीवों में सन्तुलन और ऋतु संतुलन पुनः उदय होने तक बली दुर्बली की सम्भावना बनी रहती है।*

दायित्व है। इस जिम्मेदारी को स्वीकार करने के लिए लक्ष्य सम्मत परिवार जनचर्चा हर मानव परिवारो में, समुदायो में, सभाओ में आवश्यक है। चर्चा अपने में लक्ष्य के लिए आवश्यकीय प्रक्रिया, प्रणाली और नीतिगत स्पष्टता के लिए होना सार्थक है। प्रक्रिया का तात्पर्य निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्वक किये जाने वाली कृतकारित अनुमोदित कार्यों से है।

ऐसे कार्य को हर व्यक्ति सम्पादित करने के प्रयास में प्राय: हर मानव में यह प्रवृति दृष्टव्य है। इस मुद्दे में ध्यान देने का तथ्य इतना ही है जागृति पूर्वक हम समाधान परम्परा को बना पाते है। भ्रम पूर्वक समस्याओं को तैयार कर देते है जैसे पहले कहे गये नौ प्रकार के अति क्लिष्ट समस्याएँ हैं। अतएव जनचर्चा और मानसिकता का इसमें प्रधान प्रावधान है।

जिम्मेदारी को स्वीकार करने के लिए लक्ष्य सम्मत परिवार जनचर्चा हर मानव परिवारो में, समुदायो में, सभाओ में आवश्यक है। चर्चा अपने में लक्ष्य के लिए आवश्यकीय प्रक्रिया, प्रणाली और नीतिगत स्पष्टता के लिए होना सार्थक है। प्रक्रिया का तात्पर्य निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्वक किये जाने वाली कृतकारित अनुमोदित कार्यों से है।

मन के मुद्दे पर पहले ही स्पष्ट हो चुकी है कि जीवन शक्तियाँ अक्षय है न तो मन घटता है न बढ़ता है इसलिए इस का प्रमाण हर व्यक्ति है। प्रत्येक नर नारी में जितने भी आस्वादन, चयन होते हैं उसके उपरान्त में चयन आस्वादन की मानसिकता बनी रहती है। इसे हर मानव में सर्वेक्षण कर सकते है। हर मानव द्वारा इसे स्वीकारने में भी कोई कठिनाई नहीं है। प्रत्येक में निरीक्षण करना स्वाभाविक क्रिया है। मानव में मनोप्रवृतियों को कार्यरूप और फलस्वरुप में देखने का

अरमान सदा-सदा से ही निहित है। निहित रहने का तात्पर्य हर मानव में प्रमाणित अथवा वर्तमानित रहने से है। इस ढंग से मानव अपने स्वस्थ कार्यकलाप स्वस्थ मानसपूर्वक ही सम्पादित कर पाता है। स्वस्थ मानस अनुभवमूलक मानसिकता है। अनुभव अपनी सम्पूर्णता में सहअस्तित्व ही है। इन तथ्यो पर चर्चा निष्कर्ष मानव कुल के लिए उपयोगी होना पाया जाता है।

नीति का तात्पर्य नियति विधि से अर्थात नियति क्रम, नियति लक्ष्य के सन्तुलित कार्यकलाप से है। प्रणाली का तात्पर्य सोपानित कार्यक्रमो को पहचानना, निर्वाह करना या दूसरी विधि से कड़ी से कड़ी जुड़ी हुई है। तीसरे विधि से लक्ष्य प्राप्ति के लिए किया गया सम्पूर्ण क्रियाकलाप मुख्य मुद्दा लक्ष्य प्रमाणित होने से है।

पद्धति का तात्पर्य किसी भी लक्ष्य के लिए जितने भी उपकरण साधन होते है, इन सबको सार्थकता के लिए सजा देने से जैसे मानव निपुणता पांडित्य स्वत्व है इसे पाना लक्ष्य है। इसके लिए मन तो तत्पर होना आवश्यक है शरीर भी सँजोए रहने उतना ही आवश्यक है। यह सन्तुलित रहना पद्धति है।

इसी प्रकार घर बनाना उसके लिए मिट्टी पत्थर जो कुछ भी द्रव्य है उनको विधिवत सजो देने से घर बनता ही है इसमें गलती होने से घर गिरता है। अस्तु हर लक्ष्य के लिए जितने भी साधन होते है उसको सार्थकता के अर्थ में सजाना है। इस विधि से स्पष्ट होता है हर लक्ष्य को पाने के क्रम में पद्धति, प्रणाली, नीति की आवश्यकता है।

पुष्ट करते हुए नियंत्रित रखना बन जाता है । इस विधि से यह सिद्धान्त स्पष्ट होता है कि संज्ञानशीलता पूर्वक ही संवेदनाएँ नियंत्रित होती है । संज्ञानशीलता पूर्वक संवेदनाएँ नियंत्रित रहती है इस तथ्य की पुष्टि सम्बंधो को पहचानने, निर्वाह करने के रूप में पहचानते हैं। परस्पर मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति के रूप में पहचानते हैं । सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति पूर्वक संवेदनाओ में नियंत्रण पाते है । फलस्वरूप स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार पूर्वक नियंत्रण को पहचानते हैं। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा पूर्वक संवेदनशीलता के नियंत्रण को पहचानते हैं। समाधान, समृद्धिपूर्वक जीने के क्रम में नियंत्रण समझ में आता है । वर्तमान में विश्वास, सहअस्तित्व प्रमाण विधि से संवेदनाएँ नियंत्रित होना पायी जाती है। अखंड समाज विधि से संवेदनाएँ नियंत्रित होना पायी जाती है। सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने के रूप में संवेदनाओं का नियंत्रित होना पाया जाता है । परिवार व्यवस्था मे भागीदारी करते हुए संवेदनाओं का नियमित होना पाते है। इस विधि से जागृत परम्परा को प्रमाणित करना बन जाता है अतएव सार्थक संवाद इन मुद्दो पर आवश्यक है ही ।

> ***संज्ञानशीलता पूर्वक संवेदनाएँ नियंत्रित रहती है इस तथ्य की पुष्टि सम्बंधो को पहचानने, निर्वाह करने के रूप में पहचानते हैं । परस्पर मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति के रूप में पहचानते हैं। सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति पूर्वक संवेदनाओ में नियंत्रण पाते है । फलस्वरूप स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार पूर्वक नियंत्रण को पहचानते हैं ।***

व्यवहार मानव की स्वयं स्फूर्त प्रवृति है । जीव संसार की प्रवृति कार्य है। सभी जीव वंशानुषंगी विधि से कार्य प्रवृति में है।

इसे हर व्यक्ति परीक्षण कर सकता है। क्योंकि गाय की संतान गाय जैसे कार्यो में प्रवृत रहती है । इसकी संवेदनशीलता सीमा है । संवेदनशीलता पूर्वक ही जीव संसार का वैभव निश्चित होता है । वैभव निश्चित होने का तात्पर्य आचरण निश्चित होने से है ।

हर जीवों की संवेदनशील प्रक्रियाएँ निश्चित रहना ही आचरण का निश्चय है । सुनिश्चित आचरण के आधार पर ही हर मानव समस्त प्रकार के जीवो को पहचानता है। फलस्वरूप आवश्यकता अनुसार कुछ जीवों को नियंत्रित करता अर्थात पालता और उपयोग करता है । यह सर्वविदित तथ्य है । इसका तात्पर्य यह हुआ जीव संसार संवेदनशीलता की निर्वाह विधि से प्रमाणित आचरण का स्वभाव नाम है। इसी क्रम में जीव संसार का मूल्यांकन स्वभाव के अनुसार और हर जीवो को जीने की आशा सहित होना पाया जाता है। इसलिए जीव संसार आशाधर्मी होना पाया गया है। वनस्पति संसार बीज वृक्षानुषंगी अर्थात बीज से वृक्ष, वृक्ष से बीज होना सर्वविदित है । वनस्पतियो की पहचान गुणो के आधार पर विदित है । वनस्पतियों में सारक-मारक गुण होना पाया जाता है । सारक गुण का तात्पर्य जीव संसार के लिए अनुकूल होना चाहिये । मारक का तात्पर्य प्रतिकूल होने से है ।

> ***हर जीवों की संवेदनशील प्रक्रियाएँ निश्चित रहना ही आचरण का निश्चय है । सुनिश्चित आचरण के आधार पर ही हर मानव समस्त प्रकार के जीवो को पहचानता है । फलस्वरूप आवश्यकता अनुसार कुछ जीवों को नियंत्रित करता अर्थात पालता और उपयोग करता है । यह सर्वविदित तथ्य है ।***

वनस्पति संसार बीज गुणानुषंगी पहचान है। इसका आचरण

में हर समस्या का समाधान पाना संभव हो गया है । लोक-व्यापीकरण होने की अपेक्षा में व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है।

जागृत मानव परम्परा में मानवीय शिक्षा-संस्कार को पहचान लेना स्वाभाविक है । जिसमें सहअस्तित्व वादी विधि से सम्पूर्ण ताना बाना होना पाया जाता है । इसमें मानव अपने मानवत्व को पहचानना सहज हो जाता है मुख्य मुद्दा यही है । मानवत्व का पहला सूत्र मानवीयता पूर्ण आचरण सहित परिवार में व्यवस्था का प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी । इस व्याख्या के समर्थन में भौतिक, रासायनिक और जीवन क्रियाओं को, उन-उन में त्व सहित व्यवस्था सहित पहचानने, जानने, मानने की विधि से लोकव्यापीकरण योग्य होना पाया जाता है । मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन सर्वाधिक होना चाहिए जबकि अभी तक शिक्षा का आधार और स्वरूप भौतिकवाद और आदर्शवाद के आधार पर रहा ।

श्रम विधि से श्रृंगारिता पहचानने का कार्यक्रम बना पराक्रम को पहचानने की विधि बनी और उपकार को भी पहचानने का प्रयास जारी रहा। सुविधा संग्रह का स्रोत व्यापार हुआ। नौकरी भी व्यापार का ही निश्चित ढाँचा-खाँचा है। सौंदर्य को संवेदनशीलता पर और संवेदनशीलता को वस्तु और आकार प्रकार पर निर्भर होना पाया जाता है । संवेदना से कामोन्माद भोगोन्माद ही सर्वाधिक प्रभावशाली रहा । भोगोन्माद के क्रम में कामोन्माद सर्वाधिक प्रभावशील होना देखा गया। इस 2000 के शतक में पहले दशक तक मानव भोगोन्माद में चूर होना पाया गया। अपने जीवन सहज कामनाओ के आधार पर शुभ वार्ताओ में भागीदारी भी करता रहा।

इस विधि से सम्भ्रान्त कहलाने वाले अपनी सज्जनता के लिए अपने को प्रस्तुत करते हुए उपकार विधि को पहचानने की कोशिश हुई ।

पराक्रम को पहचानने के लिए गये इसका परिचय भोगशक्ति और युद्धशक्ति के रूप मे हुआ। युद्ध शक्ति बर्बादी के लिए होना सर्वविदित है। भोगशक्ति व्यक्तिवादी होना पाया जाता है । भोगशक्ति के प्रयोग में ही सौंदर्य बोध की आवश्यकता बनी रहती है। इस विधि से सभी मानव अथवा सर्वाधिक मानव संवेदनशीलता की इस पराकाष्ठा तक पहुंचने के इच्छुक है। इसी लक्ष्य में विज्ञान शिक्षा संसार को स्वीकार हुआ है। क्योकि प्रौद्योगिकी को विज्ञान का उपज माना जाता है। प्रौद्योगिकी विधि से कम श्रम से ज्यादा उत्पादन होने की स्वीकृतियाँ बनी है। इसी कारण विज्ञान शिक्षा का लोकव्यापीकरण सुगम हुआ । विज्ञान विधा में और तकनीकी कर्माभ्यास में जिस ज्ञान के आधार पर मानव को जीना है वह ज्ञान मानव को पहचानने में पर्याप्त नहीं हो पाया। इसी प्रकार आदर्शवादी ज्ञान में मानव को पहचानना संभव नहीं हो पाया । आदर्शवादी विधि में दया के आधार पर कुछ उपदेश सद्वाक्य प्रस्तुत हुए है। लेकिन इसकी मूलशिक्षा भक्ति विरक्ति के अर्थ में प्रतिपादित हो चुकी है। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि भक्ति- विरक्ति भी व्यक्तिवादी है। व्यक्तिवाद किसी शुभ स्थली पर पहुँचने में समर्थ नहीं हुआ सर्वशुभ तो बहुत दूर है। इसलिए मानवीय शिक्षा को पहचानना एक आवश्यकता बन चुकी है।

मानवीय शिक्षा का प्रारूप :

मानवीय शिक्षा प्रारूप के अनुसार मानव को मानवीयता के संयुक्त रूप में पहचानने की आवश्यकता है। जनाकांक्षा मानवीय शिक्षा का स्वागत करता है । जनचर्चा में इसे हृदयंगम करने और

स्नेह और विश्वास, मित्र के साथ स्नेह-विश्वास, पुत्र पुत्री के साथ वात्सल्य, ममता, विश्वास, इसकी निरन्तरता में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करते है। इन सभी सम्बंधो का निर्वाह करने के साथ दायित्व और कर्तव्य अपने आप स्वीकृत होते है।

दायित्व कर्तव्यों का निर्वाह होना अपने आप में विश्वास का आधार बनता है यही व्यवहार सूत्र कहलाता है। जहाँ भी कर्तव्य दायित्वो का निर्वाह नहीं कर पाते वहाँ विश्वास नहीं हो पाता है। भ्रमित मानव परम्परा में दायित्व कर्तव्य का बोध नहीं हो पाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है व्यवहार तंत्र का आधार सम्बंध ही है। इसका निर्वाह और निरंतरता ही परिवार और समाज की व्याख्या बन जाती है। इन दोनो प्रकार की व्याख्या से पारंगत होने के फलन में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी होना स्वाभाविक है। व्यवस्था में सार्वभौमता स्वभाविक है। व्यवस्था को हर व्यक्ति बरता ही है अखण्ड समाज व्यवस्था ही व्यवस्था हो पाती है।

> ***दायित्व कर्तव्यों का निर्वाह होना अपने आप में विश्वास का आधार बनता है यही व्यवहार सूत्र कहलाता है। जहाँ भी कर्तव्य दायित्वो का निर्वाह नहीं कर पाते वहाँ विश्वास नहीं हो पाता है। भ्रमित मानव परम्परा में दायित्व कर्तव्य का बोध नहीं हो पाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है व्यवहार तंत्र का आधार सम्बंध ही है।***

व्यवहार व्यवस्था का तात्पर्य अथवा समाज व्यवस्था का तात्पर्य मानव में, से, के लिए लक्ष्य समेत जीने की विधि, विधान, कार्य और व्यवहार ही है। व्यवहार विधि संबंधो के आधार पर मूल्यों के निर्वाह करने के

दायित्व पर निर्भर किया जाता है। इसके लिए जो क्रमबद्धता अर्थात निर्वाह के लिए जो क्रम बद्धता होती है यही विधान है। इन विधि विधान के आधार पर सर्वप्रथम स्वस्थ मानसिकता की पहचान, निर्वाह, मूल्यांकन विश्वास का मूल आधार होता है। स्वस्थ मानसिकता जागृत मानसिकता होती है। जागृत मानसिकता अनुभवमूलक मानसिकता है। जागृतिपूर्ण मानसिकता अपने में मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता को प्रमाणित करने के क्रम में उद्धत रहती ही है। मानवीयता, देव मानवीयता, में परिवार और समाज व्यवस्था मानवीयता पूर्ण आचरण सहित प्रमाणित होना बनता है। इसी क्रम में दिव्य मानवीयता समग्र व्यवस्था में भागीदारी पूर्वक स्वतंत्रता, स्वराज्य को प्रमाणित करने में सार्थक हो जाती है। स्वतंत्रता, स्वराज्य सहअत्तित्व विधि से वैभवित होते है। स्वराज्य व्यवस्था में स्वाभाविक विधि से मानवीय शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, स्वास्थ्य-संयम कार्य और व्यवस्था अपने आप में निर्वाह होते है। ऐसे स्वराज्य व्यवस्था परिवार मूलक विधि से विश्व परिवार व्यवस्था तक दश सोपानीय विधि से सार्थक हो जाते है। हर स्थितियों मे सामान्य रूप मे 10-10 समझदार व्यक्तियों की एक सभा सम्पन्न होती है। एक परिवार में 10 समझदार व्यक्तियों

> ***मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता को प्रमाणित करने के क्रम में उद्धत रहती ही है। मानवीयता, देव मानवीयता, में परिवार और समाज व्यवस्था मानवीयता पूर्ण आचरण सहित प्रमाणित होना बनता है। इसी क्रम में दिव्य मानवीयता समग्र व्यवस्था में भागीदारी पूर्वक स्वतंत्रता, स्वराज्य को प्रमाणित करने में सार्थक हो जाती है।***

जन समुदाय कार्य सब छिन्न-भिन्न एवं दिशा विहिन रहे आया हुआ पाया गया।

कमोवेश ऐसी घटनाये सभी देशो में होती गयी। इसके बावजूद भी पुन: लोकमानस के लिये अथवा लोकमानस को रिझाने के लिये, पद पैसे से रिझान की प्रक्रिया अपनाते बारम्बार कलंकित होते रहे। इसके मूल कारण को परिशीलन करने से पता लगा की निर्वाचन कार्य में मत संग्रह के लिए अपार धन का नियोजन, स्वयं में नोट और वोट का गठबंधन प्रमाणित हुआ। फलस्वरूप पद का बंटवारा पैसे का बंटवारा शुरू हुआ। उसमें सन्तुष्टि असंतुष्टि अपने आप में उभर आया। सन्तुष्ट और असंतुष्ट दोनो अपने तौर तरीके से पेश आते आये। उक्त दोनो उपक्रम अभी तक देश और धरती के उपकार में नहीं लग पाया। ये सब अन्ततोगत्वा उसी बटवारे के चक्कर मे फँसते ही आए। राज्य पुरूषों का उद्‌गार सुनने मे आता है 15- 20 प्रतिशत सरकारी धन ही सार्थक रूप में लग पाता है। बाकी सब बीच में दल-दल में फँस जाता है। ये सब सुनने-देखने के बाद समझ मे आता है इससे मुक्ति पाना जरूरी है यह भ्रष्टाचार का पहला चक्कर है। दूसरा चक्कर अनुदान है। अनुदान का मतलब देने के बाद लेना नहीं। एक बार दो बार अनुदान पाने के बाद प्रकारान्तर से और पाने की मानसिकता बनी ही रहती है। अनुदान पाने वाला व्यक्ति अनुदान पाते रहना ही अपना हक समझता है। जबकि यह प्रक्रिया निरंतर नहीं हो सकती। वह सफल न होने की स्थिति मे असंतुष्ट होना स्वाभाविक है। इस ढंग से असंतुष्ट होने का तरीका ही हो गया। तीसरा चक्कर आरक्षण है आरक्षण जाति विशेष पर आधारित होने पर वह आरक्षण प्रतिभा संकट का कारण हो गई। प्रतिभा संकट का तात्पर्य जो प्रतिभाएं जिनके लिए योग्य

होती है उसे नकारने से, उपेक्षा करने से, उनकी प्रतिभा देश, राष्ट्र, राज्य के हित में नियोजित नहीं कर सके। उसे हित कार्य के लिए नियोजित नहीं करने से वह सार्थक हो नहीं पाया। इन दोनो प्रकार से इंगित क्षतियो को संकट का नाम दिया। इसमें होना क्या चाहिए इस मुद्दे पर सार्थक संवाद होना चाहिए। होने के लिए सहअस्तित्ववादी विधि से यही सूझता है कि हर व्यक्ति को, हर सामुदायिक व्यक्ति को समझदारी से सम्पन्न किया जाए हर समझदार व्यक्ति विधिवत अपनी प्रतिभा को व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में प्रायोजित करना बनता ही है। इस विधि से आरक्षण और अनुदान निष्पन्न जितनी भी गन्दगी है, मिटाने का दिन आ सकता है। इस पर ज्ञान चर्चा की आवश्यकता है ही।

हर व्यक्ति को, हर सामुदायिक व्यक्ति को समझदारी से सम्पन्न किया जाए हर समझदार व्यक्ति विधिवत अपनी प्रतिभा को व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में प्रायोजित करना बनता ही है। इस विधि से आरक्षण और अनुदान निष्पन्न जितनी भी गन्दगी है, मिटाने का दिन आ सकता है। इस पर ज्ञान चर्चा की आवश्यकता है ही।

अभी तक राजनेताओ को सर्वाधिक अभिनय कार्य के रूप में होना पाया गया। इसलिए पहले से कलात्मक अभिनय करने वाली प्रतिभाएँ, राजनेता होने के लिए उम्मीदवार हुए। ऐसे उम्मीदवारो में कुछ सफल भी हुए कुछ सफल नहीं हुए। जो अभिनय कार्यो में नहीं लगे है ऐसे व्यक्ति भी कुछ सफल हुए कुछ सफल नहीं हुए।

समुदाय विधि से भी नेतागिरी का आह्वान जन मानस से उभरी जैसे पिछड़े हुए समुदाय, कमजोर समुदाय, अल्प संख्यक

है। समझदारी के लिए वस्तु लोक सम्मुख प्रस्तुत हो चुकी है यही मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद है। इसके आधार पर मानवीय शिक्षा-संस्कार का प्रारूप लोकमानस के लिए अर्पित हुआ है। ये सभी विधा को जन चर्चा मे लाकर निष्कर्ष निकालना और स्वयं स्फूर्त विधि से अपनाना सारी दरिद्रता से छुटकारा है।

दरिद्रता का तात्पर्य बौद्धिक रूप में समझदारी में विपन्नता, भौतिक समृद्धि होने में विपन्नता, समाधानित होने में विपन्नता, वर्तमान में विश्वास (अभयता) में विपन्नता, सहअस्तित्व में विपन्नता, व्यवस्था में भागीदारी करने में विपन्नता, उत्पादन कार्य करने में विपन्नता, न्याय-सुरक्षा में विपन्नता, स्वास्थ्य-संयम में विपन्नता, उपकार कार्यो में विपन्नता ये सभी विपन्नताएँ मानव को दरिद्र बनाने में समर्थ है। इन सभी प्रकार की विपन्नताओं से मुक्ति समझदारी से ही है।

विपन्नताएँ दरिद्रता का द्योतक है। हर मानव समझदारी पूर्वक ही इन सभी विपन्नताओ से मुक्त होता है। सम्पूर्ण क्लेश दुःख से मुक्त होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं मानव भ्रमवश जितने भी प्रकार से गलती अपराध करता है इन सबका निराकरण समझदारी से होता है। अतएव समझदारी हर मानव के स्वर्णिम भविष्य का, सफल भविष्य एवं सफल वर्तमान का स्रोत है।

विपन्नताएँ दरिद्रता का द्योतक है। हर मानव समझदारी पूर्वक ही इन सभी विपन्नताओ से मुक्त होता है। सम्पूर्ण क्लेश दुःख से मुक्त होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं मानव भ्रमवश जितने भी प्रकार से गलती अपराध करता है इन सबका निराकरण समझदारी से होता है। अतएव समझदारी हर मानव के स्वर्णिम भविष्य का, सफल भविष्य एवं सफल वर्तमान का स्रोत है। इस पर जनविचार

आवश्यक है। सम्पन्नता हर व्यक्ति चाहता है हर नर-नारी चाहता है। सम्पन्नता का पहला वैभव जागृति है, दूसरा सर्वोतोमुखी समाधान है, तीसरा न्याय पूर्वक जीना, चौथा उपकार कार्य में निष्ठा रखना, पाँचवा समृद्धि को प्रमाणित करना, छठवाँ व्यवस्था में जीना, सातवाँ समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना, आठवाँ सहअस्तित्व को प्रमाणित करना, नौवा सहअस्तित्व को अपने में स्थिर होने के रूप में स्पष्ट करना अनुभव करना, दसवां सहअस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण व्यवस्था में निहित कार्यकलापो को स्पष्ट करना, ग्यारहवाँ देव मानव दिव्य मानव होना, स्वयं को प्रमाणित करना, बारहवाँ स्वराज्य स्वतंत्रता को प्रमाणित करना, ये सब नित्य वैभव के मुद्दे है। यह सब जागृति का ही वैभव है। इन सब वैभव के प्रति जनमानस की स्वीकृति के लिए जनचर्चा संवाद होना आवश्यक है। जनमानस अपने में शुभ चाहता ही है। सुख को सम्पूर्ण बारह बिन्दुओं मे इंगित कराया है। इसकी आवश्यकता पर जनचर्चा पूर्वक जिज्ञासा को निर्मित करने की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति होने में उक्त सभी बिन्दुओं का स्पष्ट अध्ययन के रूप मे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत है।

सम्पन्नता को भ्रमवश सुविधा संग्रह मान चुके है जबकि जीवन जागृति सर्वोपरी सम्पन्नता है। जागृति के उपरान्त ही हर मानव क्लेश, दुःख, विपन्नता से मुक्त हो सकता है इसे हम भले प्रकार से जीकर देखे है। जागृति के उपरान्त ही हर मानव क्लेश, दुःख, विपन्नता से मुक्त हो सकता है

हर मानव अपने वैभव को पहचान कराना चाहता ही है। इस क्रम में स्वयं वैभवशाली होना आवश्यक है। विपन्नता से सम्पन्नता

वैभव का अर्थ है। स्व-वैभव ही हर मानव का ''स्वत्व'' है। इसे ''त्व'' के नाम से इंगित कराया गया है। इस विधि से मानवत्व ही सर्व मानव वैभव का राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता स्वराज्य का ही प्रमाण है। यह राष्ट्रीयता के लिए आवश्यकीय ज्ञान विज्ञान सहअस्तित्ववादी विधि से करतलगत होता है। करतलगत का मतलब है मानव के स्वत्व में समा जाता है। सहअस्तित्व वादी विधि से हम मानव के समझदार होने की आवश्यकता इसलिए भी है कि मानव को मानव के रूप में पहचानना है एवं निर्वाह करना है एवं मानव और मानवेत्तर प्रकृति के साथ, वन खनिज के साथ संतुलन को बनाये रखना है। जिससे ऋतु संतुलन बनता है। इन दोनों आशयों के लिए सहअस्तित्ववादी विधि, सार्थक मानसिकता समझ, विज्ञान और ज्ञान सम्मत विवेक सम्पन्न होने की आवश्यकता है।

> ***हमारे देश की अथवा राज्य राष्ट्र की सीमा के अतिरिक्त स्थली को अन्य मानना बना ही रहता है, यह ही सभी प्रकार के संकट का प्रधान कारण है। इसी कारण सदा सदा द्रोह विद्रोह शोषण होते ही आया। इन उपद्रवो से मानव तो त्रस्त रहा ही है। अब धरती त्रस्त होने की स्थिति आने से इसका समाधान आवश्यक है अथवा समाधान की अपेक्षा बलवती हुई।***

राष्ट्रीयता के स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए केवल मानव रूपी इकाई ही इस धरती पर पहचान में आई है। इस बीसवीं शताब्दी के समाप्त होते तक मानव परम्परा अनेक समुदाय अनेक राज्य अनेक राष्ट्र के रूप मे दृष्टव्य हैं। जो समुदाय जिस देश या भूभाग में रहता है उसका अथवा उस सीमागत भूखंड को राष्ट्र/राज्य मान लेते है। इसी का नाम सीमा है। उसकी सुरक्षा की परिकल्पना हर समुदाय कर चुका है इसी के साथ उसी

सीमा क्षेत्र में रहने वाले राष्ट्रीयता के समर्थक रहे है अर्थात सीमा सुरक्षा के समर्थक रहे है। इसी के साथ उस क्षेत्र में रहने वाले सब व्यक्ति निश्चित संस्कृति सभ्यता के प्रति निष्ठा रखने वाले होगें। हर राज्य राष्ट्र के सभी ओर पड़ोसी देश, राज्य या राष्ट्र होना स्वभाविक है। अभी तक यही मान्यता है हमारे देश की अथवा राज्य राष्ट्र की सीमा के अतिरिक्त स्थली को अन्य मानना बना ही रहता है, यह ही सभी प्रकार के संकट का प्रधान कारण है। इसी कारण सदा सदा द्रोह विद्रोह शोषण होते ही आया। इन उपद्रवो से मानव तो त्रस्त रहा ही है। अब धरती त्रस्त होने की स्थिति आने से इसका समाधान आवश्यक है अथवा समाधान की अपेक्षा बलवती हुई। उक्त प्रकार से विभिन्न वर्ग, मत, सम्प्रदाय, जाति के रूप में अनेक समुदाय होने का आधार रहा। इसका निराकरण के लिए ''मानव जाति एक कर्म अनेक'', ''धरती एक राज्य अनेक'', ''ईश्वर एक देवता अनेक'', ''मानव धर्म एक मत अनेक'', इन चार तथ्यों को हृदयंगम करने की आवश्यकता है। इन तथ्यों को ध्यान में लाने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत हुआ। इसके पहले विचारधारा दो स्वरूपों में उपलब्ध हुई थी एक भौतिक वाद दूसरा आदर्शवाद इन दोनो विचार धाराओं ने मानव को प्रमाण का आधार नहीं माना। जबकि मानव ही प्रमाण होना आवश्यक है। आदर्शवाद ने किताब को प्रमाण माना है। किताब को पढ़कर सुनाना ही विद्वता माना गया है। भौतिकवाद ने यंत्र को प्रमाण माना।

जब से राज युग आरंभ हुआ राज्य की परिकल्पना, संस्कृति, सीमा, सभ्यता को पहचानने की आवश्यकता आ गई। इसके साथ राज्य व्यवस्था आई। शनैः शनैः संविधान की पहचान आई। इस क्रम में गुजरते हुए राज युग में भी मानव के जान माल की सुरक्षा

समर्थ होता है। गलती, अन्याय मुक्ति के लिए हर नर नारी में स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा (समझदारी) और व्यक्तित्व (आहार, विहार, व्यवहार) में सन्तुलन, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलम्बन, व्यवहार मे सामाजिक अर्थात अखंड समाज में भागीदारी होना आवश्यकता है। यह मानव वैभव का मूल स्वरूप है। यह समझदारी का भी फलन है। पद, पैसा, सम्मान पर विश्वास किया जाए अथवा इन छः महिमा में विश्वास किया जाए। इस पर जनचर्चा, विश्लेषण, निष्कर्ष की आवश्यकता है ही।

हर मानव स्वराज्य स्वतंत्रता चाहता ही है। स्वतंत्रता का स्वरूप यही है :-

- स्वयं में विश्वास करने में स्वतंत्रता
- श्रेष्ठता का सम्मान करने में स्वतंत्रता
- प्रतिभा को लोकव्यापीकरण में स्वतंत्रता
- व्यक्तित्व को प्रमाणित करने की स्वतंत्रता
- उत्पादन में स्वावलंबी होने की स्वतंत्रता
- व्यवहार में सामाजिक होने की स्वतंत्रता

सारे अपराध, अन्याय और गलतियाँ मानव के नासमझी की उपज है। समझदारी के उपरान्त मानव का आचरण निर्धारित हो जाता है ध्रुव बिन्दु यही है। जब आचरण निश्चित, स्थिर, निरन्तर प्रभावशील होने लगता है तब भरोसा, विश्वास और सुन्दर कार्यक्रम उदयशील होते है यही समझदार व्यक्ति की महिमा है।

यही छः विधा में स्वतंत्रता है इसमें निष्णात होने के फलस्वरुप :-

- मानवीय शिक्षा कार्य में स्वतंत्रता

- न्याय सुरक्षा कार्य में स्वतंत्रता
- उत्पादन कार्य में स्वतंत्रता
- विनिमय कार्य में स्वतंत्रता
- स्वास्थ्य-संयम कार्य में स्वतंत्रता

स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होती है। इनमें हमे पारंगत होना है प्रमाणित होना है यही स्वतंत्रता का वैभव है। स्वतंत्रता के साथ स्वराज्य, स्वराज्य के साथ स्वतंत्रता अविभाज्य है। परिवार संबंध, मानव संबंध, प्राकृतिक संबंधो में न्याय और संतुलन प्रमाणित करने में स्वतंत्रता बनी ही रहती है।

समाधानित मानव में, से, के लिए कृत कारित, अनुमोदित विधि से किया गया सम्पूर्ण क्रियाकलाप स्वतंत्रता है। उसके परिणामों की पहचान ही स्वराज्य है। स्वयं का वैभव अर्थात मानवकुल का वैभव स्वयं में स्वराज्य है। मानव कुल समझदारी के आधार पर ही संयुक्त वैभव को प्रमाणित कर पाता है न कि युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह से। संग्रह सुविधा के सर्वाधिकता के जगह में भी हजारो लाखो लोग इस धरती पर हो चुके हैं। इसके बावजूद पद, पैसा, प्रतिष्ठा सम्पन्न होते हुए उनके स्वयं में तृप्ति का न होना पाया जा रहा है। इस स्थिति में पद, पैसा, प्रतिष्ठा के आधार पर

स्वास्थ्य-संयम कार्य में स्वतंत्रता स्वयं सम्पन्न होती है। इनमें हमे पारंगत होना है प्रमाणित होना है यही स्वतंत्रता का वैभव है। स्वतंत्रता के साथ स्वराज्य, स्वराज्य के साथ स्वतंत्रता अविभाज्य है। परिवार संबंध, मानव संबंध, प्राकृतिक संबंधो में न्याय और संतुलन प्रमाणित करने में स्वतंत्रता बनी ही रहती है।

परिभाषा मनाकार को साकार करने वाला मन: स्वस्थता को प्रमाणित करने वाला है । मनाकार को मानव आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया है । जहां तक मन: स्वथता को प्रमाणित करने की बात आती है इस मुद्दे पर सोच विचार तैयार नहीं हुए, चाहत सभी में है । इसके लिए सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व को समझने समझाने का, जीवन ज्ञान को समझने समझाने का, मानवीयता पूर्ण आचरण को समझने समझाने का अधिकार अर्हता सहित पारंगत होने के आधार पर इस परिभाषा को मानव के सम्मुख रखा गया है । समझदारी में पारंगत होने के उपरान्त ही मानव की परिभाषा स्वाभाविक रूप में स्पष्ट हो गई । इसी आधार पर हम विश्वास करते है कि समझदारी का लोकव्यापीकरण होना स्वाभाविक है । समझदारी ही मानव परिभाषा के अनुसार प्रमाण हो पाता है अन्यथा हम परिभाषा के अनुरूप प्रस्तुत नहीं हो पाते ।

मानवीयता पूर्ण आचरण को सहअस्तित्व रूपी दर्शन के आधार पर जीवन ज्ञान के आधार पर पहचाना गया है । मानवीयतापूर्ण आचरण का पहला आयाम सबंधो को पहचानना, मूल्यो का निर्वाह करना, मूल्यांकन करना, परस्परता में तृप्ति को पाना । दूसरा आयाम में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य करना । तीसरे आयाम मे तन, मन, धन रूपी अर्थ का

मानवीयतापूर्ण आचरण का पहला आयाम सबंधो को पहचानना, मूल्यो का निर्वाह करना, मूल्यांकन करना, परस्परता में तृप्ति को पाना । दूसरा आयाम में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य करना । तीसरे आयाम मे तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा करना ।

सदुपयोग सुरक्षा करना । तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग का तात्पर्य परिवारगत आवश्यकता के अनुसार शरीर पोषण संरक्षण और समाजगति में नियोजित करना । मानव समाज अखंड समाज ही होता है । समाज गति का तात्पर्य अखंड समाज के अर्थ में भागीदारी करना अर्थात सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना ।

परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक समाज गति के अर्थ को ध्वनित करता है यह ध्वनि परिवार में न्यूनतम होकर विश्व परिवार में सर्वाधिक विशाल हो जाती है इस बीच क्रम विधि से परिवार व्यवस्था से, परिवार समूह व्यवस्था, परिवार समूह व्यवस्था से ग्राम मोहल्ला परिवार व्यवस्था ग्राम मोहल्ला परिवार व्यवस्था से ग्राम मोहल्ला परिवार सभा, ग्राम मोहल्ला समूह व्यवस्था से क्षेत्र परिवार व्यवस्था, क्षेत्र परिवार व्यवस्था से मंडल परिवार व्यवस्था, मंडल परिवार व्यवस्था से मंडल समूह परिवार व्यवस्था, मंडल समूह परिवार व्यवस्था से मुख्य राज्य परिवार व्यवस्था, मुख्य राज्य परिवार व्यवस्था से प्रधान राज्य परिवार व्यवस्था, प्रधान राज्य परिवार व्यवस्था से विश्व राज्य परिवार व्यवस्था तक बुलंद होती जाती है यह व्यवस्था में भागीदारी की बुलंदी है बुलंदी का मतलब मजबूती से है । इसप्रकार हर मानव अपनी पहचान को परिवारगत व्यवस्था से दस सोपानीय व्यवस्थाओं

प्रौद्योगिकी प्रक्रिया प्रणाली उसके साथ तकनीकी आरक्षण, यह कहां तक न्यायिक है । सम्पूर्ण ज्ञान लोकार्पित होना ही उसकी ख्याति है । लोकार्पण न हो पाना उसका ख्याति न होकर अज्ञान कहा जाता है । इस तर्क से यही स्पष्ट होता है प्रौद्योगिकी प्रणालियों का पेटेन्टीकरण मानव के हित में नहीं है ।

अध्याय - 7

व्यवहारवादी कार्यकलाप

व्यवहारवादी कार्यकलाप

मानव व्यवहार अपने सम्पूर्ण रूप में या अपनी सम्पूर्णता के अर्थ में मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था ही है । मानवीय आचरण संस्कृति, सभ्यता का प्रमाण रूप होना पाया जाता है । मानव संस्कृति स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में प्रमाणित होती है । सभ्यता का स्वरूप, सभ्यता का प्रमाण सम्बंध मूल्य, मूल्यांकन उभय तृप्ति के रूप में होता है । संस्कृति सभ्यता इन दोनो के आधार पर नैतिकता का स्वरूप तन, मन, धन, रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा स्पष्ट हो चुका है । इसके आधार पर मानवीयता पूर्ण आचरण स्पष्ट हो चुका है । इस मुद्दे पर लोक स्वीकृति की आवश्यकता है ही । यह जनचर्चा का मुद्दा है ।

मानवीयता पूर्ण आचरण को हर विधा में पहचानने की विधि सहित संविधान मानवीय संविधान है । मानव परम्परा के लिए आचार संहिता की आवश्यकता बनी ही रहती है । मानवीय आचार संहिता को क्रम से स्पष्ट कर लेना ही अपने आप में जन मानस के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

मानवीयता पूर्ण आचरण को हर विधा में पहचानने की विधि सहित संविधान मानवीय संविधान है। मानव परम्परा के लिए आचार संहिता की आवश्यकता बनी ही रहती है। मानवीय आचार संहिता को क्रम से स्पष्ट कर लेना ही अपने आप में जन मानस के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

मानव अपने में बहुमुखी प्रवर्तनशील है ऐसे प्रर्वतन में परिवार

मतलब है हमारा लक्ष्य सही नहीं था। अतः लक्ष्य पर पुनर्विचार की आवश्यकता बनती है। इसके अभाव में मानव संकट ग्रस्त होता ही है। संकट से छूटना हर व्यक्ति चाहता है। इसलिए हम ज्ञानावस्था के मानव ऐसे लक्ष्य को पहचान ले जिससे सदा के लिए सर्वतोमुखी समाधान अर्जित होता रहे।

सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक केवल मानव ही है और कोई वस्तु इस धरती पर विद्यमान नहीं है। ज्ञानतंत्रणा का भनक सुदूर विगत से मानवजाति को है। ज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा भी है। ऐसी ज्ञान सम्पन्नता के लिए भाँति-भाँति की कल्पना व्यक्तिवाद-समुदायवाद के रूप में भी प्रस्तुत होते आयी है। कल्पनाओं को मानव परीक्षण करने लगा किंतु कोई भी कल्पना, परिकल्पना प्रस्ताव, ज्ञान लोकव्यापीकरण होने की जगह में नहीं आया। इसके विपरीत कई समुदायो का ऐसा मानना है ज्ञान वर्णनीय नहीं है शब्दो से बताया नहीं जा सकता, शब्द ज्ञान को बोध कराने मे समर्थ नहीं है। ये सब बाते बताते रहे। समुदायों के बुजुर्ग ने जब यह देखा इसका लोकव्यापीकरण नहीं हो रहा है तब दूसरा रास्ता निकाला कि स्वर्ग में सुख मिलेगा और पुण्य कार्यो को निरूपित करना शुरू किया। इसके लिए यज्ञ दान, तप, परोपकार बताया।

सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक केवल मानव ही है और कोई वस्तु इस धरती पर विद्यमान नहीं है। ज्ञानतंत्रणा का भनक सुदूर विगत से मानवजाति को है। ज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा भी है। ऐसी ज्ञान सम्पन्नता के लिए भाँति-भाँति की कल्पना भी प्रस्तुत होते आयी है।

तप में जो कुछ स्वीकृतियाँ विभिन्न समुदायो में बनी है वे सब अपने अपने में एक बेहतरीन ढाँचा-खाँचा है। जो सामान्य जन के लिए कठिन है। ऐसे स्वरूप को बनाए रखना ही तप का फल माना गया। उसके साथ अपने ढंग की सम्भाषण की शैली, स्वर्ग में सुख मिलने का उपदेश, फलस्वरूप सम्मान पात्र बनने वाले भी बढ़ते रहे सम्मान करने वाले भी बढ़ते रहे। सिलसिला अभी भी जोर शोर से देखा जा रहा है। कुल मिलाकर आदर्श पूर्ण व्यक्तित्व अपने आप में सामान्य लोगो के लिए कठिन सा लगने लगा। सबके लिए सुलभ न लगना, जिनके सान्निध्य से सेवा से पुण्य मिलने का आश्वासन होना, मनोकामना पूरी होने का आश्वासन होना इसी चौखट को हम आदर्श कहते है। आदर्श का सम्मान सुदूर विगत से होते आया है, आज भी होता है। इसमें विचारणीय मुद्दा है आदर्शो का प्रयोजन फल लोकव्यापीकरण न होना, उपकार कैसे होगा, उपकार विधि का लोकव्यापीकरण मुद्दा होना है कि नहीं इस पर जनचर्चा की आवश्यकता बनी हुई है।

मानव सुदूर विगत से ही ज्ञान की बातें या सूचनाएँ सुनकर ज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा करता रहा। विज्ञान की सूचना सुनकर, विज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा हर मानव में पायी जाती है। विवेक सम्पन्न होने की इच्छा भी हर मानव के मन में स्थान बनाकर रह

आदर्श का सम्मान सुदूर विगत से होते आया है, आज भी होता है। इसमें विचारणीय मुद्दा है आदर्शो का प्रयोजन फल लोकव्यापीकरण न होना, उपकार कैसे होगा, उपकार विधि का लोकव्यापीकरण मुद्दा होना है कि नहीं इस पर जनचर्चा की आवश्यकता बनी हुई है।

अस्तित्व मे जो भी वस्तुएँ है उन सबका सहअस्तित्व मे वैभव होना समझ में आने के उपरान्त स्वयं भी सहअस्तित्व में होना बोध हो जाता है । होने का स्वरूप और वातावरण यह दोनो स्थितियाँ सहअस्तित्व दर्शन से स्पष्ट हो जाती है फलस्वरूप मानव यथास्थिति को पहचानने में समर्थ हो जाता है । अर्थात जागृति सम्पन्न स्थिति को समझने में सम्पन्न हो जाता है । जागृति के आधार पर यथास्थितयों को पहचानने की स्थिति में विज्ञान और विवेक सम्मत निश्चयन सहित कार्यकलापो में प्रवृत होना पाया जाता है । यह पहले से विदित हो चुकी है कि विवेक का प्रयोजन लक्ष्य को पहचानने और निर्धारित करने में और विज्ञान का तात्पर्य दिशा निर्धारित करने पहचानने में होना पाया गया है । फलस्वरूप व्यवहार और कार्य इन दोनो में सहअस्तित्व प्रमाणित हो जाता है । सहअस्तित्व को प्रमाणित होने के क्रम में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणित होता है । फलस्वरूप परिवारमूलक स्वराज्य विधि से हर नर-नारी अपने सौभाग्य को प्रमाणित कर देना सहज है। यह भी मुद्‌दा जनचर्चा के लिए प्रस्तुत है। इसमें जनसंवाद का मुद्‌दा यही है हमें जागृत होने के लिए तत्पर होना है कि नहीं होना है।

विज्ञान विधि से काल के साथ क्रिया का, क्रिया के साथ काल को निर्धारित करने की एक सहज प्रणाली बन जाती है । क्योंकि विश्लेषण विधि से सम्पूर्ण प्रकार का वस्तु ज्ञान हुआ ही रहता है। वस्तु ज्ञान के साथ संयोजन ज्ञान हुआ रहता है। संयोजन ज्ञान के साथ परिणाम एवं प्रयोजन ज्ञान हुआ रहता है । इन सभी आधारो के साथ निर्णय होना सहज रहता है। इसकी औचित्यता को लक्ष्य के आधार पर परिशीलन करना विवेक विधि से सम्पन्न हो

जाता है। विवेक विधि का उदय सहअस्तित्व ज्ञान से सम्पन्न हुआ रहता है। विवेक विधि से सहअस्तित्व का नजरिया सुस्पष्ट रहता है। सहअस्तित्व के नजरिया में समाधान, समृद्धि अभयता का स्वरूप समाया रहता है। अतएव इन लक्ष्यो के अर्थ में संश्लेषण होना एक स्वाभाविक क्रिया है। इसी के चलते लक्ष्य सम्मत दिशा निर्धारित हो जाती है। ऐसे निर्णयो के आधार पर योजना, कार्य योजना स्वीकार होती है। ऐसे स्वीकारने के आधार पर प्रतिबद्धता में निष्ठा होना पाया जाता है। इस विधि से हम जीकर प्रमाणित होने की स्थिति में पहुँचते है। इसकी आवश्यकता, जनसंवाद, परामर्श एक आवश्यकीय कार्यकलाप है।

सहअस्तित्व के नजरिया में समाधान, समृद्धि अभयता का स्वरूप समाया रहता है । अतएव इन लक्ष्यो के अर्थ में संश्लेषण होना एक स्वाभाविक क्रिया है । इसी के चलते लक्ष्य सम्मत दिशा निर्धारित हो जाती है । ऐसे निर्णयो के आधार पर योजना, कार्य योजना स्वीकार होती है । ऐसे स्वीकारने के आधार पर प्रतिबद्धता मे निष्ठा होना पाया जाता है ।

सहअस्तित्व विधि अपने आप सार्वभौम होना स्वाभाविक है । सहअस्तित्व अपने में सम्पूर्ण अस्तित्व की ध्वनि को ध्वनित करता है । सम्पूर्ण अस्तित्व अपने में चार पद, चार अवस्थाओं में होना पाया जाता है। इसमे से चार पद प्राणपद, भ्रान्तिपद, देवपद, दिव्यपद के रूप में अध्ययन होता है । चार अवस्थाएँ पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था में गण्य होती है। ऐसी स्वीकृतियाँ बहुत जटिल भी नहीं है। पदार्थावस्था के मूल में सम्पूर्ण प्रजाति के परमाणुओ का अध्ययन है। इनमें से कुछ प्रजातियाँ को मानव पहचाना भी है। नहीं पहचानी हुई प्रजातियाँ पहचान में आने

समस्याएँ हैं मानव द्वारा निर्मित वह सब समाप्त होना समीचीन है इस मुद्दे पर भी मानव अपनी संवाद विधि को आगे बढ़ा सकता है।

जागृति पूर्वक जीने में समझदारी व्यवस्था और मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही कार्यक्रम के रूप में निर्धारित होता है। मानव लक्ष्य अपने आप में स्पष्ट हो चुका है। ऐसे लक्ष्य को प्रमाणित करती हुई मानव परम्परा जागृत मानव परम्परा में होना पायी जाती है। ऐसी स्थिति में मानवीय शिक्षा-संस्कार का प्रबल प्रमाण परम्परा में बना ही रहता है। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन पूरा हो जाता है। मानव के अध्ययन में शरीर और जीवन ही है। इसके कारण रूप में समग्र अस्तित्व ही है। समग्र अस्तित्व में पूरक विधि से जीवन का होना और भौतिक रासायनिक वस्तुओ की रचना विधि से मानव शरीर का भी रचना होना वर्तमान है। शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव अपने कार्यकलापो को करता हुआ, जीता हुआ, अपनी पहचान बनाने के लिए यत्न प्रयत्न करता हुआ देखने को मिलना स्वाभाविक है। जागृत परम्परा में शिक्षा में सम्पूर्ण अस्तित्व का अध्ययन एक मौलिक विधा है। पूरकता विधि से एक दूसरे की यथा स्थितियो का वैभव समझ में आता है। इसी क्रम में हर पद और अवस्था की यथा स्थितियाँ अध्ययनगम्य हो जाती है। अध्ययनगम्य होने का तात्पर्य सह-

समग्र अस्तित्व में पूरक विधि से जीवन का होना और भौतिक रासायनिक वस्तुओ की रचना विधि से मानव शरीर का भी रचना होना वर्तमान है। शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव अपने कार्यकलापो को करता हुआ, जीता हुआ, अपनी पहचान बनाने के लिए यत्न प्रयत्न करता हुआ देखने को मिलना स्वाभाविक है।

अस्तित्व में होने के रूप में स्वीकृत होने से है। अस्तित्व में जो कुछ होता है, जो कुछ है उसी का अध्ययन है। अस्तित्व में जितनी भी विविधता दिखाई पड़ती है इन सभी में विकास और जागृति का सूत्र समाया रहता है। फलन में मानव जागृति को प्रमाणित करने के लिए उद्यत है ही। इस प्रकार मानव परम्परा को जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना सुलभ हो जाता है। संवाद का मुद्दा यही है कि जागृति हमको चाहिये कि नहीं।

मेरे अनुसार लोकमानस जागृति के पक्ष में है जागृति का मतलब जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। मानव परम्परा में अभी छः सात सौ करोड़ की जनसंख्या बतायी जाती है। इन सात सौ करोड़ आदमियों मे से कोई ऐसा मेरी नजर में नहीं आता है जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से मुकरे। जानने, मानने के उपरान्त पहचानना निर्वाह करना स्वाभाविक होता है। जानना मानना नहीं होने पर भी मानव में पहचानना निर्वाह करना होता ही है। न जानते हुए पहचानने के लिए प्रयत्न संवेदनशीलता के साथ ही हो पाता है। मानव परम्परा में संवेदनाओ का आधार झगड़े की जड़ बन चुकी है। हर मानव आवेशित न रहते हुए स्थिति में झगड़े के पक्ष में नहीं होता है जब आवेशित रहता है तभी झगड़े के पक्ष में होता है। आवेशित होना भय और प्रलोभन के

अस्तित्व में जो कुछ होता है, जो कुछ है उसी का अध्ययन है। अस्तित्व में जितनी भी विविधता दिखाई पड़ती है इन सभी में विकास और जागृति का सूत्र समाया रहता है। फलन में मानव जागृति को प्रमाणित करने के लिए उद्यत है ही। इस प्रकार मानव परम्परा को जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना सुलभ हो जाता है।

दूसरी भाषा में सम्पूर्ण एक एक वस्तुएँ, तीसरी भाषा मे जड़-चैतन्य प्रकृति, चौथी भाषा मे भौतिक, रासायनिक और जीवन कार्यकलाप व्यापक वस्तु मे सम्पृक्त विधि से नित्य क्रियाकलाप के रूप मे वर्तमान है। इसे बोधगम्य कराते है यही सहअस्तित्व का मूल स्वरूप है। इस मुददे को बोध कराना बन जाता है। बोध को प्रमाणित करने के क्रम मे अनुभव होना सुस्पष्ट हो जाता है। जिससे अनुभवमूलक विधि से हर नर-नारी को जीने के लिए प्रवृति उदय होती है। इस तथ्य के आधार पर संज्ञानशीलता को प्रमाणित करना संभव हो जाता है। संज्ञानशीलता अपने आप में सर्वतोमुखी समाधान होना पाया जाता है। अनुभावात्मक अध्यात्मवाद सर्वतोमुखी समाधान के स्रोत के रूप में अध्ययन विधा से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। संवाद के लिए उल्लेखनीय मुददा यही हैं अनुभवमूलक विधि से जीना हैं या नहीं, समाधानपूर्वक जीना है या नहीं।

मानवीय शिक्षा में मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का अध्ययन करने कराने का प्रावधान है। मानव संचेतना को मानव संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता के रूप में माना गया है। जिसके अध्ययन से संज्ञानशीलता पूर्वक जीने की विधि बन जाती है। संज्ञानशीलता पूर्वक जीने का तात्पर्य मानव लक्ष्य को सार्थक बनाना है। परम्परा के रूप में इसकी

> ***मानव संचेतना को मानव संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता के रूप में माना गया है। जिसके अध्ययन से संज्ञानशीलता पूर्वक जीने की विधि बन जाती है। संज्ञानशीलता पूर्वक जीने का तात्पर्य मानव लक्ष्य को सार्थक बनाना है। परम्परा के रूप में इसकी निरन्तरता होना हैं।***

निरन्तरता होना हैं। मानव की हैसियत को, मानसिकता को, अथवा जागृति मूलक मानसिकता को महसूस कराता है। साथ में जागृति की महिमा मानव परंपरा के लिए प्रेरणा देता है। क्योंकि मानव संज्ञानशीलता पूर्वक लक्ष्य मूलक विधि से जीना ही मानव परम्परा का वैभव है अर्थात स्वराज और स्वतंत्रता है। इस तथ्य को भली प्रकार बोध कराते है। इसमें संवाद के लिए मुद्दा यही है मानव मूल्य मूलक विधि से जीना हैं या रूचिमूलक विधि से जीना है।

मानवीय शिक्षा क्रम में व्यवहारवादी समाजशास्त्र को अध्ययन कराया जाता हैं। जिसमें मानव मानव के साथ न्याय, समाधान, सहअस्तित्व प्रमाणपूर्वक जीने के तथ्यों को बोध कराया जाता है। जिससे सहअस्तित्व बोध, जीवन बोध सहित व्यवस्था में जीना सहज हो जाता है। इसमें संवाद का मुद्दा हैं सहअस्तित्व बोध सहित जीना हैं या केवल वस्तुओं को पहचानते हुए जीना है। मानवीय शिक्षा में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को अध्ययन कराया जाता है। अर्थ की आर्वतनशीलता के मुद्दे पर यह बोध कराया जाता है कि श्रम ही मूलपूंजी है। प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता मूल्य को स्थापित किया जाता है। उपयोगिता के आधार पर वस्तु मूल्यन होना पाया जाता है। इस विधि से हर व्यक्ति अपने परिवार मे कोई न कोई चीज का उत्पादन

> ***आवर्तनशील अर्थव्यवस्था में श्रम मूल्य का मूल्याँकन करने की सुविधा हर जागृत मानव परिवार मे होने के आधार पर वस्तुओ का आदान-प्रदान श्रम मूल्य के आधार पर सम्पन्न होना सुगम हो जाता है। इससे मुद्रा राक्षस से छुटने की अथवा मुक्ति पाने की विधि प्रमाणित हो जाती है। जिसमें शोषण मुक्ति निहित रहती है।***

मानव लक्ष्य होने के आधार पर कर्मतंत्र, व्यवहार तंत्र, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का तंत्र ये तीनो तंत्र मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही है । इसी का नाम कर्मदर्शन है । कर्मदर्शन का सम्पूर्ण स्वरूप अपने में मानव जितने प्रकार के कार्य करता है, उसकी सार्थकता क्या है, कैसे किया जाये। इन तीनो विधा में अध्ययन कराता है। इससे मानव जाति मार्गदर्शन पाने की अथवा व्यवस्था में जीने की प्रेरणा पाना एक देन है । अतएव कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाकलापो में संगीतमयता की आवश्यकता पर एक अच्छा संवाद हो सकता है । मानव की संम्पूर्ण संवेदनाएँ अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के रूप में पहचानी जाती है जिसे हर सामान्य व्यक्ति पहचानता है। इसके नियंत्रण के लिए सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आचरण को संजो लेने का प्रमाण प्रस्तुत करना ही अभ्युदय समाधान है । इसका मुद्दा यही है कि कायिक वाचिक मानसिक रूप में एकरूपता चाहिये या नहीं। यदि चाहिये तो मध्यस्थ दर्शन सहअस्तितत्ववाद में पारंगत होना आवश्यक है । नहीं की स्थिति में इसकी जरूरत नहीं है ।

> ***अभ्यास दर्शन अपने में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित क्रियाकलापो में सार्थकता का प्रतिपादन है । ''अभ्यास दर्शन'' समझदारी के लिए अभ्यास को स्पष्ट करता है । एवं समझने के उपरान्त समझदारी को प्रमाणित करने की अभ्यास विधियो का अध्ययन कराता है ।***

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अनुसार अभ्यास दर्शन सर्वमानव के लिये अध्ययन के अर्थ में प्रस्तुत है । अभ्यास दर्शन अपने में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित

क्रियाकलापो में सार्थकता का प्रतिपादन है । ''अभ्यास दर्शन'' समझदारी के लिए अभ्यास को स्पष्ट करता है । एवं समझने के उपरान्त समझदारी को प्रमाणित करने की अभ्यास विधियो का अध्ययन कराता है। अध्ययन होने का प्रमाण अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने का प्रतिपादन है। अनुभव सहअस्तित्व में होने का स्पष्ट अध्ययन करा देता है, बोध करा देता है। इससे मानव परम्परा में प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इसमें जीवन समुच्चय का और दर्शन समुच्चय का आशय सुस्पष्ट हो जाता है। जीवन समुच्चय अपने में दृष्टा पद् प्रतिष्ठा सहित कर्ता-भोक्ता पद में प्रमाणित होने का बोध होता है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही जीवन के लिए दृष्य रूप में प्रस्तुत रहता है। सम्पूर्ण दृष्य व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित है। नियम-नियंत्रण-संतुलन ही इसका सूत्र है । नियम की व्याख्या सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में प्रत्येक एक एक की यथास्थिति के आधार पर निश्चित आचरण ही व्याख्या है। ऐसा निश्चित आचरण ही हर इकाई का त्व है । ऐसी यथा स्थितियाँ और आचरण परिणामानुषंगी विधि से, बीजानुषंगीय विधि से एवं आशानुषंगीय रूप में स्पष्ट होता हुआ देखने को मिलता है। अभ्यास दर्शन ऐसी स्पष्टता को स्पष्ट रूप में अध्ययन करा देता है । सभी स्पष्टताएँ नियम, नियंत्रण, सन्तुलन से गुथी हुई के रूप में होना पाया जाता है। इस भौतिक रासायनिक रूपी बड़े छोटे रूप में होना पाया जाता है। होना ही अस्तित्व है। मानव भी जड़ चैतन्य प्रकृति के रूप में होना अध्ययनगम्य है । इसी आधार पर चैतन्य प्रकृति में दृष्टा पद प्रतिष्ठा होना, इसके वैभव में ही दृष्टा-कर्ता-भोक्ता पद का प्रमाण प्रस्तुत करना ही जागृति का प्रमाण है। अभ्यास दर्शन इन तथ्यो को अध्ययन कराता है । इसमें मुद्दा यही है कि हमे सम्पूर्ण अध्ययन

के रूप में मानव स्वयं पा लेना अर्थात मानव कुल पा लेना सर्वशुभ के लिए आगे की कड़ी है ।

अभी तक जितनी भी स्वीकृतियाँ भ्रम के आधार पर अथवा जागृति के आधार पर बन चुकी है, इनके मूल में शुभ की अपेक्षा, घोषणा, प्रयोग, प्रयास, अभ्यास व्यवहार कार्य किया जाना स्पष्ट है। यह सब प्रयोगो का नजीर रहते जिन-जिन मुद्दो में सार्वभौम स्वीकृति नहीं हो पाई है उसे स्वीकृति की एकरूपता में घटित करा लेने से ही समुदायिक फर-फंदे का उन्मूलन हो पायेगा। फरफंद का तात्पर्य भ्रमित मान्यता के आधार पर द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध तक पहुंचने का रास्ता से है । इसलिए सार्वभौम के ध्रुवो पर और मानव कुल की अखंडता के ध्रुव पर, सम्पूर्ण अध्ययन पर, सार्वभौम स्वीकृति के रूप में, सार्वभौम स्वीकृति का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृति अथवा सम्पूर्ण देश, काल में होने वाली स्वीकृति से है, इसमें एकरूपता की आवश्यकता बनी रहती है। इस क्रम में मानव अपनी महिमा मंडित मर्यादा को पहचानना अवश्यंभावी है।

परिवार ही मूलत: सभा के रूप मे, सभा ही परिवार के रूप में वैभवित होता है । निर्णय लेने के रूप में सभा कहलाता है । क्रियान्वयन करने के रूप में परिवार कहलाता है। इस प्रकार परिवार और सभा अविभाज्य होना पाया जाता है । सभा में संवाद अवश्यंभावी है। जिसमें एक दूसरे की मानसिकता, प्रयोजन, फल, परिणाम का बोध होना पाया जाता है । फलस्वरूप हर निर्णय सर्वसम्मति के रूप में सार्थक होना पाया जाता है । सर्वसम्मतियाँ परिवार में ही हो पाती है। सभी मुद्दे समझदारी से शुरूआत होते हुए प्रमाणीकरण तक लम्बाई चौड़ाई होना पाया जाता है। मानवत्व सहज समझदारी का मूल रूप सहअस्तित्व है, प्रमाणीकरण का

स्वरूप सहअस्तित्व है । इस प्रकार से प्रमाणीकरण और समझदारी की वस्तु एक ही हुई। इसी बीच सभी कड़ियाँ जुड़ी हुई है। इन सभी कड़ियों में सहअस्तित्व की खुशबू बहती ही रहती है । इसमें कोई अलग विशेष प्रयास का स्थान भी नहीं है । स्वभाव गति में सहअस्तित्व की धारा प्रमाण तक अर्थात मानव द्वारा प्रमाण तक और मानव द्वारा किया गया प्रमाण अस्तित्व रूपी सहअस्तित्व तक जुड़ा ही रहता है । यही अनुभव की महिमा है । ऐसे अनुभव की निरन्तरता रहना स्वाभाविक है । इसलिए मानव परम्परा में अनुभवमूलक विधि, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम इन सभी कार्यो में सहअस्तित्व का नजरिया स्पष्ट होता ही रहता है। यही मानव कुल का परम वैभव है। यही स्वराज्य और स्वतंत्रता की महिमा है। इस पहलू पर जो मुद्दा है स्वराज्य और स्वतंत्रता को प्रमाणित करना है या नहीं, यह संवाद का मुद्दा हो सकता है । इसे मानव कुल निरीक्षण परीक्षण करेगा ही।

मानव कुल अपना सम्पूर्ण वैभव को प्रमाणित करने के रूप में प्रथम सोपान परिवार ही है। परिवार में जो कमी रह जाती है वह कहीं भी आपूर्ति नहीं हो पाती। परिवार में ही हर मानव शुद्ध रूप में अथवा संपूर्ण रूप में पहचान के योग्य है। परिवारजन परस्परता में जितने अच्छे तरीके से पहचान पाते है, परिवार के बाहर अथवा किसी दूसरे परिवार के व्यक्ति को उसके सम्पूर्ण आयाम कोण, दिशा, परिपेक्ष्यो, के संदर्भ मे ध्यान देना स्पष्ट होना जटिल हो ही जाता है। इसलिए हर मानव को अपने परिवार में जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना अभ्युदय का प्रमाण है । अभ्युदय का तात्पर्य भी सर्वतोमुखी समाधान से ही है । इस विधि से मानव इस बात पर

चिन्तन, गायन, प्रार्थना, विलपने के क्रम में गुजर जाता है। गुजरते-गुजरते थक जाना भी होता है। कोई आशित घटना अर्थात मनोकामना सफल होने की स्थिति में सिद्धि हो गया है मान लेते है। न होने की स्थिति में ज्ञान हो गया मान लेते है। पुनः सर्वाधिक ऐसे साधक किसी मानव के साथ अपनी पहचान को स्थापित करने में प्रयत्नशील होते हैं। ऐसे प्रयास में कोई-कोई काफी भीड़ इकट्ठा करने में सफल हो जाते है, जितना बड़ा भीड़ उतना बड़ा सिद्ध अथवा ज्ञानी माने जाते है। ऐसे ज्ञानी और सिद्धो की सूची बड़ी होते हुए भी मानव परम्परा भ्रमजाल में यथावत बनी हुई ही है। क्योंकि सर्वमानव में समझदारी सुलभ हुई नहीं है। मानव लक्ष्य जीवन लक्ष्य का प्रमाण लोकव्यापीकरण हुआ नहीं है। यही मुख्य मुद्दा है इसी विफलता के आधार पर सर्वभौम व्यवस्था अखंड समाज बना नहीं है। यही संकट आज के लिए समस्त प्रकार की समस्या का कारण है। इसी भ्रमवश हर मानव भय प्रलोभन और समस्याओ के लिए स्रोत बना हुआ है। इससे छूटने से ही मानव कुल का कल्याण है।

समृद्धि व्यवस्था का परिणाम है। व्यवस्थापूर्वक श्रम नियोजन, श्रम नियोजन पूर्वक उत्पादन, उत्पादन के आधार पर समृद्ध होना देखा गया है। इसी प्रकार से हर परिवार को प्रमाणित होना आवश्यक है। पहले मंजिल के रूप में हर परिवार ही अपने वैभव का प्रमाण है। इसका स्वरूप समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी, समाधान समृद्धि है

सर्वशुभ का स्वरूप हर मानव परिवार में प्रत्येक नर-नारी समझदारी से सम्पन्न होना एवं समाधान समृद्धि को प्रमाणित करना है। इस विधि से समृद्धि व्यवस्था का परिणाम है। व्यवस्था पूर्वक श्रम नियोजन, श्रम

नियोजन पूर्वक उत्पादन, उत्पादन के आधार पर समृद्ध होना देखा गया है। इसी प्रकार से हर परिवार को प्रमाणित होना आवश्यक है। पहले मंजिल के रूप में हर परिवार ही अपने वैभव का प्रमाण है। इसका स्वरूप समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी, समाधान समृद्धि है।

इस क्रम से जीने, समझने, प्रमाणित होने के संयुक्त स्वरूप को परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था नाम दिया है। व्यवस्था का द्वितीय सोपान परिवार समूह सभा है। इसमें 10 परिवार से निर्वाचित एक एक सदस्य एकत्रित होगें। एक दूसरे की पहचान जागृत परिवार विधि से सम्पन्न रहती ही है। इनमें नर नारी एक परिवार होते हैं। इनमें प्रतिबद्धता का स्वरूप यही रहेगा 10 परिवारों में सन्तुलन को बनाए रखना। 10 परिवार में सन्तुलन का मतलब 10 परिवारों की परस्परता में न्याय पूर्वक जीने की कला को उज्जवल बनाना। 10 परिवारों की परस्परता में पूरकता को बनाए रखना। ये दो प्रधान कार्य हैं। इसी क्रम में 10 परिवार में हस्त शिल्प, ग्राम शिल्प, कविता साहित्य, चित्रकला कृषि एवम कुटीर उद्योग में प्रोत्साहन बनाए रखना है। इनमें ऐसी कलाओं के निखरने के लिए उपायो को सोचना, संयोजित करना यह कार्यक्रम रहेगा। इस प्रकार 10 परिवारों का सौभाग्य का निखार हर दिन, महीना, वर्ष, श्रेष्ठता की ओर शोध होना स्वाभाविक रहेगा। यह दूसरे सोपान का वैभव हुआ। इस प्रकार के कार्य के फलन में दसो परिवारो का संयुक्त देन बनी रहेगी। इसमें दसो व्यक्ति कार्यरत रहेगे सोचेंगे। हर आयुवर्ग के लिए परिवार सूत्रों से सूत्रित रहने का कार्यक्रम बनाए रखेगे। अपने अपने परिवार में समृद्धि के प्रमाण रूप में समाजगति के दूसरे सोपान सौभाग्य में भागीदारी करेगे।

निष्ठान्वित हो जाते है । इन सौ परिवार में संस्कृति सभ्यता की समानता को वैभव के रूप में मूल्यांकित करेंगे । जहाँ कही भी अर्थात किसी परिवार अथवा परिवार समूह सभा में किसी श्रेष्ठता की आवश्यकता होने पर ग्राम समूह सभा के दसो प्रतिनिधि प्रेरक हो जाते हैं फलस्वरूप वांछित श्रेष्ठता उदय हो ही जाती है । इस प्रकार श्रेष्ठता और श्रेष्ठता का सम्मान प्रणाली अपने आप गतिशील हो जाती है । हर प्रतिनिधि मानवीयता पूर्ण आचरण में निष्ठान्वित रहेंगे। हर स्थिति में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित किये रहेंगे । यही प्रधान सूत्र है ।.

शिक्षा-संस्कार की मूल वस्तु अक्षर आरंभ से चलकर सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सम्पन्न होने तक क्रमिक शिक्षा पद्धति रहेगी । हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान बना ही रहेगा । गाँव के हर नर-नारी समझदार होने के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से प्राथमिक शिक्षा को सभी शिशुओ में अन्तस्थ करने का कार्य कोई भी कर पायेंगे । इस विधि से प्राथमिक शिक्षा के कार्य के लिए कोई अलग से वेतन या मानदेय की आवश्यकता नहीं रहती है । गाँव के हर नर-नारी शिक्षित करने का अधिकार सम्पन्न होगें ।

दूसरे विधि से हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा शाला के साथ हर अध्यापक के लिए एक निवास साथ में ग्राम शिल्प का एक कार्यशाला, हर अध्यापक के लिए 5-5 एकड़ की जमीन और 5-5 गाय की व्यवस्था रहेगी यह पूरे गाँव के संयोजन से सम्पन्न होगा । यह शाला, अभिभावक विद्याशाला के रूप में कार्यरत रहेगी । इस दोनो विधि से शिक्षा-संस्कार कार्य को पूरे गॉव में उज्वल बनाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा । मानवीय शिक्षा मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद पर आधारित रहेगी । शिक्षा सहअस्तित्व दर्शन

जीवन ज्ञान के रूप में प्रतिपादित होगी । इस प्रकार हम एक अच्छी स्थिति को पायेंगे । जिससे सहअस्तित्ववादी मानसिकता बचपन से ही स्थापित होने की व्यवस्था रहेगी ।

व्यवस्था की दूसरी कड़ी में सुरक्षा कार्य सम्पन्न होगे । इसमें ग्राम परिवार सभा के लिए निर्वाचित दसो सदस्य सुस्पष्ट ज्ञान सम्पन्न, विवेचना, विश्लेषण में पारंगत रहेंगे । हर परिवार समझदार परिवार होने के आधार पर गलती और अपराध की कोई संभावना नहीं रहती । फिर भी ऐसी कोई प्रवृति उदय होने से घटना तक पहुंचने के पहले सुधार होने की व्यवस्था रहेगी । ऐसी व्यवस्था का प्रभावशीलन परिवार से ही आरम्भ होकर परिवार समूह, ग्राम परिवार सभा में कार्यरत निष्णात व्यक्तिगण सुधार के दायी रहेंगे । जो अनुचित है अनावश्यक है अथवा गलती अपराध है ऐसी मानसिकता को पहचानने का दायित्व सर्वप्रथम परिवार में उसके अनन्तर परिवार समूह सभा में और ग्राम परिवार में रहेगी । ग्राम के सम्पूर्ण सौ परिवार दायी रहेंगे । जैसे ही ऐसी मानसिकता देखने मिले तुरन्त सुधारने का कार्य करेंगे । और पूरा गाँव के सौ परिवारो का मूल्यांकन, वर्ष में एक बार अथवा छः महीने में एक बार, आवश्यकता पड़ने से महीने में एक बार होना स्वाभाविक रहेगी । इसकी सुगमता हर दस परिवार के प्रतिनिधि करेंगे। हर परिवार अपना मूल्यांकन स्वयं करेगा । इन दोनो आधार पर ग्राम सभा अपना ध्यान देकर मूल्यांकन की घोषणा करेगा । इनमें से कोई भी परिवार में श्रेष्ठता की आवश्यकता होने पर अथवा परिवार समूह में श्रेष्ठता की आवश्यकता होने पर ग्राम सभा उसकी भरपाई करने का कार्य करेंगे । मूल्यांकन का ध्रुव बिन्दु समाधान, समृद्धि सम्पन्नता होगा । तीसरा बिन्दु उपकार कार्य में प्रवर्तन समाज गति के रूप में मूल्यांकित होगी ।

बनाए रखेगा । जिसमे से कुछ भाग उड़ जाता है, कुछ भाग जमीन पी जाती है जो पाताल जल स्रोत बन जाती है जिससे पाताल जल तादाद बने रहने का सूत्रपात हो सके । जिससे धरती की सतह पर जो वन, वनस्पति शेष है वे सुरक्षित रह सके । क्योंकि पाताल जल स्रोत जितना नीचे चला जायेगा । धरती की सतह का जल और जल स्रोत सूखने की संभावना रहेगी । वर्तमान में सर्वाधिक नदी नाले, तालाब, सरोवर सूखा हुआ देखने को मिलता है । सतह में वन, वनस्पति और औषधि, वनोपज प्रचुर मात्रा में होने के लिए धरती की सतह के ऊपर पानी सर्वाधिक रहना आवश्यक है । तभी नदी नाला किनारा, कुँआ, तालाब, सरोवर ये सब भी पानी से भरपूर दिखाई पड़ेगे । जैसे ऋतु संतुलन और धरती के सन्तुलन की स्थिति में रहे आये हैं ।

इस क्रम में हम अच्छी तरह से कृषि उत्पादन के साथ इमारती एवम जलाऊ लकड़ी का भी अपने खेतों में उपज लेना सहज है । हर समझदार कृषक को भूमि के सदुपयोग को अपनी पूरकता विधि से पहचानना बन जाता है । अतएव उत्पादन कार्य के सभी आयामों की संभावनाओं के आधार पर तकनीकी कर्म अभ्यास गाँव में स्थापित करने का अधिकार ग्राम सभा में बना रहेगा । कृषि के चारो स्वायत्ता के पक्ष हर ग्राम सभा सुलभ सार्थक बनाने का कार्य करेगी ।

व्यवस्था की चौथी कड़ी हर परिवार में उत्पादन का एक कोष रहेगा । परिवार के उपयोग से अधिक जितने भी उत्पादन रहेंगे उनका विनिमय अड़ोस-पड़ोस में अर्थात ग्राम-समूह और ग्रामो में कर लेगी । इससे सामाग्री लाने और ले जाने की प्रक्रिया में काफी बचत हो जायेगी । जिससे ईंधन से लेकर श्रम तक, श्रम से लेकर

यंत्रो तक बचत का प्रावधान है । इसे अच्छी तरह से समझदार परिवार का हर सदस्य समझ सकता है । परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन जितना भी रहेगा, वे सभी उत्पादनो को एक सम्मिलित कोष में एकत्रित किया जायेगा । यह कोष मूलत: वस्तुओं का ही कोष है । इसके साथ श्रम मूल्य का मूल्याँकन रहेगा । उसी के बराबर में हर गांव में कोषालयो के खाते में श्रम मूल्य के साथ प्रतीक मुद्रा का संख्या भी लिखकर रखी जायेगी । उसी के साथ हर परिवार को उसी ग्राम कोष से क्या-क्या वस्तुएँ समीचीन दिनो के लिए आवश्यक है वह सूची रहेगी । उसी कोष से अपेक्षित वस्तुओ को प्राप्त किया जायेगा । ग्राम विनिमय कोष से वस्तुएँ किसी दूसरे ग्राम कोष में जायेगी और दूसरी वाँछित वस्तुओं को लायेगी । तभी तक समीपस्थ बाजार में विक्रय कर आवश्यक वस्तुओ को क्रमवार लाने की व्यवस्था रहेगी । लाभ हानि मुक्त विधि से वस्तुओ को ग्राम के सभी व्यक्तियों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था रहेगी । इसी विनिमय कोष के कार्यक्रम में सभी प्रकार की आहार संबंधी वस्तुएँ यथा सब्जी, दूध, अनाज वगैरह तो रहेगी ही; कलात्मक जितनी भी उपज है, कृषि औजार, भारवाहन का औजार, गृहनिर्माण में उपयोगी वस्तुएँ, अलंकार संबंधी सभी उपज को कोषालय में एकत्रित किया जायेगा । कोषालय से बाजार में दूसरा स्वराज्य कोषालय में ले जाने की, ले आने की व्यवस्था ग्राम स्वराज्य सभा में रहेगी ।

व्यवस्था की पॉचवी कड़ी स्वास्थ्य-संयम का मतलब मानसिक रूप में संतुलित रहने का तौर तरीका, इसका ध्रुव बिन्दु स्वस्थ मानसिकता को सटीक प्रमाणित करने के रूप में पहचाना जाता है । जहाँ कहीं भी असंतुलन दिखने पर उसको संतुलित करने

सर्वमानव समझदार होने के आधार पर और सर्वमानव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मूल्याँकन होता रहेगा। ग्राम समूह सभा में शिक्षा-संस्कार पहली कड़ी है, दूसरी कड़ी में न्याय-सुरक्षा कार्य संपन्न होना पाया जाता है। न्याय सुरक्षा कार्य में निष्णात व्यक्तित्व का इसके पूर्व की सोपानीय कार्यो के आधार पर पहचान हुआ रहता ही है। यह हर निर्वाचित व्यक्ति का साधारण रूप में पहचान होना स्वाभाविक है। पीछे कहे गये तीन सोपान में मानव न्याय जो अनसुलझा रह जाता है उसको सुलझाने के लिए ग्राम समूह सभा का महिमा मंडित कार्य रहेगा। यह 1000 परिवार के साथ न्याय दृष्टि को, सत्य दृष्टि को सजग बनाए रखने का अनुपम सौभाग्य है। इस विधि से न्याय सुरक्षा आश्वस्त होने का कार्यक्रम विस्तृत होना समझ में आता है। इसका मूल्याँकन हर ग्राम मौहल्ला सभा के माध्यम से क्रियान्वयन होना व्यवहारिक हो पाता है। ग्राम समूह सभा अपने न्याय सुरक्षा कार्य का समीक्षा और मूल्यांकन प्रक्रिया को सम्पादित करेगा। जिससे सभी मानव सन्तुष्ट रहने का गवाही अथवा प्रमाण तैयार होगा। यह मानव इतिहास का स्वर्णिम अध्याय होगा।

तीसरी कड़ी में उत्पादन कार्य एक महत्वपूर्ण भूमिका है ही। परिवार समूह सभा में प्रौद्योगिकी के पक्ष में जितनी भी जानकारी चाहिये उन सब में पारंगत रहना आवश्यक है। ये दसों सदस्य ग्रामोद्योग, लघु उद्योग विधा में पारंगत रहेगें। जैसे वन खनिज की संतुलित व्यवस्था है। वैसे ग्राम उद्योग विधा में उद्योगों को स्थापित करेगें। जैसे पढ़ाई की सामग्री, अलंकार सम्बंधी सामग्री, गृह निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री, दूरगमन दूर दर्शन, दूरश्रवण सम्बंधी उपकरणो को निर्मित करने की व्यवस्था बनी रहेगी। ऐसा

उत्पादन उन दस गाँव की आवश्यकता के अर्थ में रहेगा। इस उत्पादन कार्य में श्रम निवेश परस्पर दस गाँव के बीच ही बना रहेगा। इसका आदान प्रदान के लिए विनिमय कोष बनाना स्वाभाविक है। इस विनिमय कोष के साथ आदान-प्रदान का सम्बंध बनाए रखेगी। स्वास्थ्य संयम पाँचवी कड़ी है इस कड़ी में ग्राम सभा में जिसका स्वास्थ सुधार नहीं हो सका ऐसे लोगो के साथ लिए स्वास्थ्य-संयम केन्द्र रहेगा। प्राद्योगिकी कार्य से जितनी भी समाज गति के लिए साधन उपलब्ध हुए रहते है इसे हम समृद्ध कर रहे है ऐसे समृद्ध कोष से स्वास्थ्य केन्द्र को सम्पन्न बनाए रखने का केन्द्र कार्य करेगा। इस प्रकार स्वास्थ्य केन्द्र के लिए साधन भरपूर रहेगा।

पाँचवे सोपान में दस ग्राम समूह सभा से निर्वाचित दस सदस्य क्षेत्र परिवार सभा के रूप में पहचाने जायेगे। इसमें अनुभव की और भी मजबूती बनी रहेगी। समझदारी में परिपक्व होना स्वाभाविक है भागीदारी में गति और तीव्र होती जायेगी। इन ही सब सौभाग्य को एकत्रित होना क्षेत्र परिवार सभा अपने वैभव को प्रमाणित करने में समर्थ होगी।

बुनियादी तौर पर हर परिवार समझदार होने के आधार पर ही क्षेत्र परिवार सभा का वैभव भी प्रमाणित होने की संभावना बनी रहती है। हर मानव का उद्देश्य साम्य होने के आधार पर व्यवस्था सूत्र व्याख्या अपने आप स्पष्ट होती है। इसकी भी प्रथम कड़ी शिक्षा-संस्कार कार्यक्रम है। इन शिक्षा संस्कार कार्यो में यथावत एक विद्यालय रहेगा। इसके पहले की सीढ़ी में जो प्रौद्योगिकी बनी रहती है उसके योगदान पर उत्तर माध्यमिक शालाएँ और स्नातक शालाएँ क्रम विधि से कार्य करेगी। क्रम विधि का तात्पर्य हर इन्सान

मानवीयता सहअस्तित्ववादी विधि से प्रमाणित हो पाती है।

इसकी तीसरी कड़ी उत्पादन कार्य रहेगी। यह बड़े-बड़े उद्योगो के सम्बंध में सोच विचार करेगी। लघु उद्योग, ग्राम उद्योग, कुटीर उद्योग ग्राम शिल्प के मूल द्रव्यो को तैयार करने के सम्बंध में रहेगी। दूर श्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन, के यंत्र उपकरणो को निर्मित करने के भी साधारण प्रयास रहेगी।

चौथी कड़ी में विनिमय कोष कार्य सम्पादित होगा। मंडल परिवार सभा कोष से ग्राम परिवार सभा कोष तक का सम्बंध यथावत बना रहेगा। इसी प्रकार दूर संचार विधि से सभी कड़ियो का सम्बंध एक दूसरे से जुड़ा रहेगा। इसलिए सभी सोपान का अनुभव सुलभ रहता त्त

पांचवी कड़ी में स्वास्थ्य संयम का प्रबंधन रहेगा। पूरे मंडल के असाध्य घटनाग्रस्त स्थितियों से उभरने के लिए उपाय बना रहेगा। हर मानव स्वस्थ होने की उम्मीदो को लेकर जीता है। इससे स्वास्थ्य संयम कार्यक्रम में यह भी समाहित रहेगा जिसमें स्वायत्त विधि से स्वास्थ्य को संभाले रहने के ज्ञान, उपाय, कर्माभ्यास कराने की व्यवस्था रहेगी। इस प्रकार पॉचो कड़ियो का कार्य यथावत चिन्हित रहेगा इसी प्रकार आगे की कड़ियो में भी रहेगी।

मंडल समूह परिवार सभा दस मंडल परिवार सभा में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल समूह परिवार सभा के कर्णधार रहेगें। इसी क्रम में सभी प्रकार के कार्यकलापो को तथा पांचों कड़ियो के कार्यक्रमों को इस सातवीं सोपान में प्रमाणित करने का दायित्व रहेगा इसमें सम्पूर्ण मानव प्रयोजनो को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना कार्यक्रम रहेगा। ऐसे मानव अधिकार परिवार सभा से ही प्रमाणरूप में वैभवित होते हुए शनैः शनैः पुष्ट होते हुए

मंडल समूह परिवार सभा में मानव अधिकार का सम्पूर्ण वैभव स्पष्ट होने की व्यवस्था रहेगी। समान्यतः मानव अर्थात समझदार मानव शनैः शनैः दायित्व के साथ अपनी अर्हता की विशालता को प्रमाणित करता ही जाता है। अपनी पहचान का आधार होना हर व्यक्ति पहचाने ही रहता है। समूचे अनुबंध समझदारी से व्यवस्था तक को प्रमाणित करने तक जुड़ा ही रहता है। प्रबंधन इन्ही तथ्यो में, से, के लिए होना स्वाभाविक है। समझदारी में परिपक्व व्यक्तियों का समावेश मंडल समूह सभा में होना स्वाभाविक है। ऐसे देव मानव दिव्य मानवता को प्रमाणित करते हुए दृढ़ता सम्पन्न विधि से शिक्षा विधा में शिक्षा-संस्कार कार्य को सम्पादित करते है।

शिक्षा-संस्कार एक प्रथम कड़ी है इसमें अति सूक्ष्मतम अध्ययन, शोध प्रबंधो को तैयार करने की व्यवस्था रहेगी। शोध प्रबंधो का मूल उद्देश्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को और मधुरिम सुलभ करना ही रहेगा। इसके लिए सारी सुविधाएँ जुटाने का कार्यक्रम मंडल समूह सभा बनाये रखेगा। इसका प्रबंधन मंडल सभा के जितने भी प्रौद्योगीकी रहेगी उसकी समृद्धि के आधार पर व्यवस्थित रहेगा। ऐसी व्यवस्था के तहत में और विशाल विशालतम रूप में व्यवस्था सूत्रों को सुगम बनाने का उपाय सदा-सदा शोध विधि से व्यवस्थापन रहेगा। ऐसे शोध कार्यो के लिए सामग्री मे सातो सीढ़ियों की गतिविधियाँ रहेगी इस प्रकार शोध प्रबंधन का स्रोत बनी रहेगी। ऐसे शोध प्रबंधन स्वाभाविक रूप में दसो सीढ़ी और पाँचो कड़ियो की समग्रता के साथ नजरिया बना रहेगा। इस विधि से मंडल समूह सभा की प्रथम कड़ी का लोक उपकारी और मानव उपकारी होने के रूप में प्रमाणित रहेगी। दूसरी कड़ी न्याय-सुरक्षा है। न्याय-सुरक्षा विधा में मंडल समूह परिवार

उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट न्याय-सुरक्षा कार्य, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट विनिमय कार्य गति और सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य-संयम का शोध संयुक्त रूप में होता रहेगा । ये सभी सोपानीय परिवार सभाओ के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होती रहेगी। इस विधि से अपनी गरिमा सम्पन्न शिक्षण कार्य, कर्माभ्यास पूर्ण कार्यक्रम को सम्पन्न करता रहेगा ।

दूसरी कड़ी न्याय-सुरक्षा यथावत रहेगी विशेषकर परस्पर सीढ़ियो के बीच विसंगतियों को समाधानित करती रहेगी । राज्य सुरक्षा के सम्बन्ध में शोध कार्य सम्पन्न होता रहेगा। ग्राम सुरक्षा से मुख्य राज्य सुरक्षा तक एक मधुरिम एक सूत्र विधियों को जाँचते रहेंगे । इन में मजबूती को बनाते रहेगे । साथ में मार्गदर्शन सभी सोपानो के साथ आदान प्रदान विधि से सम्पन्न होता रहेगा ।

तीसरी कड़ी अपने आप में उत्पादन कार्य की रहेगी इसमें बड़े उद्योग समाहित रहेंगे प्रत्येक मुख्य राज्य में यातायात जैसे रेल सम्बंधी उपकरणो को प्राप्त करने का कार्यक्रम बना रहेगा। हर मुख्य राज्य परिवार सभा में इसकी परिपुष्टता को बनाये रखने की व्यवस्था रहेगी। जैसे बड़े बड़े वाहन इनको बनाने की प्रौद्योगिकी बनी रहेगी। इस क्रम में प्रत्येक राज्य सभा अपने में समृद्ध होने की व्यवस्था बनी रहेगी ।

चौथी कड़ी विनिमय कोष होगी इसका आदान-प्रदान विनिमय कार्य को मुख्य राज्य परिवार सभा सम्पन्न करेगी। इसमें सभी आदान-प्रदान व्यवस्था विनिमय प्रक्रिया में ही समाहित रहेगी। इसमें सन्तुष्टि बिन्दु यही है कि सर्वाधिक उत्पादन हो जो आवश्यकता से अधिक हो, आवश्यकता का आंकलन सभी सोपानीय व्यवस्था में संबंध अनुबंध से पहचानने की व्यवस्था रहेगी ।

पांचवी कड़ी स्वास्थ्य-संयम रहेगी प्रधान रूप में प्रौद्योगिकी में कार्य करने वालो के लिए बना ही रहेगा । उनके साथ अन्य सभाओ के द्वारा आये हुए स्वास्थ्य संयम समस्या ग्रस्त व्यक्तियों को राहत प्रदान करेगी । स्वास्थ्य संयम कार्यक्रम का पूरे परिवार के सम्मिलित कार्यक्रम को साधनो की पूर्ति उत्पादन कार्यो से सम्पन्न होने की व्यवस्था रहेगी । इस क्रम में सम्पूर्ण व्यवस्था का वैभव मानव के लिए अतिप्रयोजनशील होना देखा गया है एवं समझ में आता है ।

नवें सोपान में प्रधान राज्य सभा होगी यह दस निर्वाचित सदस्यों से गठित होगी । यह दस सदस्य दस मुख्य राज्य परिवार सभा में कार्यरत दस-दस सदस्यो में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित किये जाने की विधि से उपलब्ध रहेगी । इसमें ऐसे पारंगत विद्वान होने के आधार पर प्रधान राज्य सभा का गठन गरिमामय होना स्वाभाविक है। इस सभा गठन कार्य के लिए जितने भी साधनो की आवश्यकता रहती है दस मुख्य राज्य सभाओं के द्वारा संचालित उद्योगो के आधार पर प्रावधानित रहेगी । ये सभी प्रावधान अपने आप में लोकार्पण विधि से संपादित रहेगी । दूरसंचार व्यवस्था भी इन्ही स्त्रोतो से समावेशित रहेगी। फलस्वरूप प्रधान राज्य सभा की गति सुस्पष्ट रहेगी अथवा आवश्यकता अनुसार रहेगी ।

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार ही रहेगी। प्रधान राज्य परिवार सभा से संचालित शिक्षा समूचे दसो मुख्य राज्यो की संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था की सार्थकता और समग्र व्यवस्था की सार्थकता के आँकलन पर आधारित श्रेष्ठता और श्रेष्ठता के लिए अनुसंधान, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, कर्माभ्यासपूर्वक रहेगी । प्रौद्योगिकी विधा का कर्माभ्यास प्रधान रहेगा । व्यवहार अभ्यास

समुचित मार्गदर्शन करना इस सभा का अधिकार रहेगा । इसी के साथ साथ प्राकृतिक संतुलन, जीव संतुलन, वनस्पति संतुलन, खनिज संतुलन, ऋतु संतुलन के सम्बंध में समुचित मार्गदर्शन को प्रस्तुत करना, अध्ययन योग्य विधि से स्वस्थ रखने के लिए सर्वाधिक ध्यान देना उसके लिए समुचित मार्गदर्शन अध्ययन विधि से प्रस्तुत करना रहेगा ।

इस सभा की तीसरी कड़ी उत्पादन-कार्य है । उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता का मूल्याँकन करना सभी सोपानीय उत्पादनो के सम्बन्ध में पूर्णतया सजग रहना सन्तुलन वस्तु उत्पादन के लिए प्रधान राज्य सभाओ का मार्ग दर्शन देना बना रहेगा । इस सभा के सम्पूर्ण साधनो को मुख्य राज्य सभाओ के जो मुख्य प्रौद्योगिकी रहेगी उसी के बलबूते पर पूरा साधन एकत्रित रहेगा । साधनो के सदुपयोग का चित्रण, प्रेरणा देने का अधिकार इस सभा मे निहित रहेगा । आरंभिक स्थिति में आवश्यक समझने पर सामरिक तंत्रो का उत्पादन प्रौद्योगिकीय विधि से विश्व राज्य सभा में रहेगा । उसके लिए स्रोत सभी प्रधान राज्य सभाएँ है । सभी आवश्यक तकनीकी प्रचलित हो चुकी है । इस विश्व राज्य सभा में एक विश्व सुरक्षा समिति बनी रहेगी । इसमे सभी प्रधान राज्य सभा के एक एक प्रतिनिधि निर्वाचित विधि से प्रस्तुत रहेगे ।

जहाँ तक सामरिक तंत्र के लिए आवश्यक है इसकी आवश्यकता तब तक रहेगी जब तक परस्पर राज्यो में पूर्ण विश्वास एकरूपता का सेतु न बन जाये । इस विधा में निश्चयन यही है समझदारी के साथ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सार्थक रहेगी । थोड़े दिन उपरान्त मानव कुल मे सामरिक उत्पादन सर्वथा अयोग्य सिद्ध होकर रहेगा ।

यह भी एक परिकल्पना मानव कुल कर सकता है कि दूसरे किसी पृथ्वी से इस पृथ्वी पर आक्रमण करने का भ्रम हो सकता है । इसमें कही भी मानव हो, शनैः शनैः जागृत होते हुए जागृतिपूर्ण विधि से समग्र व्यवस्था को पहचानने का मुहूर्त हर पृथ्वी पर उदय होता ही है । क्योंकि पूरी प्रक्रिया इस धरती पर जैसी गुजर चुकी है उसे देखने पर अनुमान यही होता है किसी पृथ्वी पर भिन्न जलवायु मे मानव कुल का विस्तार होते-होते पूरी उस पृथ्वी का ज्ञान होना उसका भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी स्वरूप समझ मे आना विभिन्न जलवायु से दूरसंचार जुड़ना, ये सब शनैः शनैः गतिशील सोच-विचार का परिणाम होता रहेगा । ऐसी संभावना के चलते अन्ततोगत्वा जागृति पूर्ण विधि को तलाशना होता है ।

जागृति पूर्ण विधि को तलाशने के उपरान्त सदा-सदा से बनी हुई इतिहास जुड़ी हुई मिलती है और जागृति के उपरान्त व्यवस्था का सूझबूझ होना मानव कुल की ही प्रतिष्ठा है । मानसिकता के आधार पर जागृति को विकसित करने वाला, पहचानने, जानने, मानने, प्रमाणित करने वाला एक मात्र मानव ही है ।

हर जलवायु में विभिन्न प्रकार के आदमी होते है अर्थात मानव शरीर का रचना विभिन्न नस्ल, रंग, रूप का होता है । यह बात इसी धरती पर गवाहित हो चुकी है । इसी प्रकार अन्य धरती पर भी हो सकती है । जागृति की महिमा सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज का प्रमाण किसी अन्य धरती अथवा अनंत धरती में भी मानव का उदय हो चुका हो, उन सबका स्वरूप एक ही हो जाता है यानि मानसिक स्वरूप, क्योंकि उद्देश्य एक ही बनता है । दृष्टा कर्ता भोक्ता पद निश्चित हो जाता है । इन तथ्यो से हमे विदित होता है हम मानव लक्ष्य सम्पन्न विधि से जीने के लिए जागृति एक

अध्याय 8

जनचर्चा की आवश्यकता

जनचर्चा की आवश्यकता

मानव अपने में कल्पनाशील, कर्म स्वतंत्र होने व बोलने के तरीको को, भाषा स्वरूप दिया हुआ, के रूप में प्रमाणित है। हर भाषा में किसी न किसी वस्तु का नाम परस्परता में होने वाली क्रिया-फल-परिणामों का नामकरण हो पाता है। प्रकारान्तर से हर मानव किसी न किसी भाषा में अस्तित्व में ही किसी न किसी वस्तु फल-परिणाम घटना का नाम जानता ही है। उसी के साथ क्रिया प्रक्रियाओ का नाम है सूझ-बूझ का भी नाम है। नाम का उच्चारण ही बन चुका है। साथ में यह भी देखा गया है कि गूँगा भी बातचीत करना चाहता है इसका भी अभ्यास मानव ने कर लिया। इस प्रकार मानव भाषा सम्पन्न है।

भाषा में जितने भी शब्दो को प्रयोजित करते है कारणवादी, गुणवादी, गणितवादी रूप में वर्गीकृत होता है। इसके मूल में रूप गुण स्वभाव धर्म का नाम समाहित रहता है। मानव मानव की परस्परता में चर्चा संवाद करता है। जिसे सामान्य भाषा में बातचीत कहते है। संवाद के बिना आदमी की अभिव्यक्ति अधूरी है। अतएव मानव हर अवस्था से अपने और आगे अवस्था के लिए संवाद आवश्यक है। जागृतिपूर्ण होने के उपरान्त भी उसकी निरन्तरता के लिए संवाद बना ही रहेगा।

जनचर्चा ही शिक्षा-संस्कार का शिलान्यास/ वातावरण का सूत्र :

मानव अपनी परस्परता में संवाद विधि से तथ्यो को जानने, मानने, पहचानने के आशय का प्रयोग करता है। सर्वमानव में

व्यवहार और कार्य मानव मानव के साथ और प्रकृति के साथ करता है। इन सबका फल परिणाम मानव व्यवस्था में अपनी पहचान को स्थापित करना ही है। यही स्वराज्य व्यवस्था का सूत्र है। इस प्रकार हम अपने वैभव को अर्थात मानव में, से, के लिए होने के प्रमाण को व्यवस्था में, व्यवहार में प्रमाणित करना देखा गया है। ऐसे प्रमाण के साथ हर मानव जागृति के फलन में, समझदारी मे ही समझदारी की महिमा के रूप में अथवा फलन के रूप में समाधान सम्पन्न हो जाता है यही संवाद का प्रयोजन है।

जनचर्चा में सहअस्तित्व की अपेक्षा :

जनसंवाद के मूल में एक से अधिक व्यक्तियों का होना सर्वविदित है। चर्चा यदि किसी झाड़, पत्थर के साथ करते हैं तब आदमी के संतुलन के बारे में सोचना बनता है। ऐसे सोचने में ऐसा भी देखा गया है झाड़, पत्थर, इमारतो के साथ चित्र, मूर्ति के सामने जितनी भी प्रार्थना की जाती है वह सब पूजा पाठ के नाम से पहचाना गया है। वार्तालाप जो झाड़ पत्थर के साथ करता है यह सब प्रलाप कहलाता है। व्यक्ति में प्रलाप का पहचान, मानव में रोगी मानसिकता के रूप में पहचाना है। वह भी आयुर्वेद के अनुसार अति त्रिदोष होने से प्रलाप करता है ऐसा लिखा है। देखने में भी ऐसा लगता है। अज्ञान से भी प्रलाप होता है।

हर मानव अपने को रोगी होना स्वीकारता नहीं है। स्वस्थता की अपेक्षा सबमें निहित है। स्वस्थता का तात्पर्य स्वस्थ मानव शरीर के द्वारा जागृति प्रमाणित होना है। शरीर के द्वारा प्रमाणित होने का तात्पर्य परिवार व्यवस्था में प्रमाणित होना और समग्र व्यवस्था में प्रमाणित होना है।

इससे यह पता चलता है मानव संवाद मानव के साथ ही सार्थक होना पाया जाता है। इसी बीच कुछ ऐसी भी घटना देखी गई हैं कि जीव जानवरो के साथ भी मानव अपना सम्भाषण करता है। इस संवाद में स्वयं को बोलना होता है और उसके उत्तर स्वयं ही स्वीकार लेना होता है। इस विधा में ऐसा भी देखा गया है मानव ने जो कहा उसके आधार पर उत्तर स्वीकारा गया। जैसे तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली, गाय, घोड़ा, बाघ, भालू सब के साथ मानव अपने संकेतो को प्रसारित करता है इसके बदले में वह संकेतों के अनुसार अनुकरण कर दिया उसे सार्थक मान लेते हैं। मानव के संकेतो को जीव जानवर ग्रहण करते हैं निष्कर्ष निकलता है कि सार्थक संवाद मानव मानव के ही साथ कर पाता है इसे भली प्रकार देखा गया है। दूसरे किसी से सार्थक हो ही नहीं सकता है। मानव में यही विशेषता है समझने और फल परिणाम में एकरूपता आ जाती है यही समाधान है। समाधान के लिए सम्पूर्ण जन चर्चा है।

जनचर्चा में वास्तविकता को परखने की विधि यथार्थता को उद्घाटित करने की विधि, सत्यता को स्वीकारने की विधि :

मानव संवाद में अध्ययन में वस्तु कैसी है इस बात को बोध कराने की अपेक्षा स्पष्ट हुई है मानव जब परस्परता में संवाद, अध्ययन कर पाता है उक्त आशय के अर्थ मे ही होना पाया जाता है। यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता ही अध्ययन के लिए सर्व मुद्दा है। इन मुद्दों पर जनचर्चा होना अर्थात मानव में परस्परता में संवाद होते आया है। सहअस्तित्व वादी विधि से वास्तविकता को परखने की अर्थात जांचने की विधि स्पष्ट है वस्तु कैसी है इसे अध्ययनगम्य,

वास्तविकताएँ निरन्तर उदयमान प्रकाशमान है । इसे समझने का अधिकार केवल मानव में ही है । इसे पूर्णतया हृदयंगम कराने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत है ।

जन चर्चा में मानवाकाँक्षा का प्रबल स्थान :

सर्वमानव संवाद करने योग्य इकाई होना सुस्पष्ट हो चुका है । संवाद का अंतिम लक्ष्य मानवाकाँक्षा का पहचान होना और उसे प्रमाणित करना ही है । मानवकाँक्षा के स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही प्रमाण है । इसे प्रमाणित करना मानव में, से, के लिए परम आवश्यक है । मानव सदा-सदा अपने में सन्तुष्ट होने के अर्थ मे सारा संवाद और अध्ययन करता है कार्य और व्यवहार भी करता है । पाने की स्थली मे रिक्त रहने के स्थान पर ही लक्ष्य के अर्थ मे संवाद प्रबल कारण होना पाया जाता है । सभी देशकाल परिस्थिति में सदा-सदा से मानव लक्ष्य अनुवेषी रहा है । यही एक महत्वपूर्ण सूत्र मानव मन में घर किये आया है । इसी सूत्र के आधार पर मानव अपने को अध्ययन मे लगाता है फलस्वरूप संवाद भी करता है । संवाद और अध्ययन के आधार पर ही निष्कर्ष निकलता है । जब कभी भी निष्कर्ष निकलता है तब मानवकाँक्षा अथवा मानव लक्ष्य से सूत्रित होना होता है । जैसे कोई भी संवाद

> ***मानव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना यथार्थता है । स्वभाव गति वास्तविकता है । सत्यता अपने स्वरूप मे सहअस्तित्व विधि से नित्य वर्तमान ही है । इन्ही सत्यता के आधार पर यथार्थता वास्तविकताएँ निरन्तर उदयमान प्रकाशमान है । इसे समझने का अधिकार केवल मानव में ही है । इसे पूर्णतया हृदयंगम कराने के लिए मध्यस्थ-दर्शन सह-अस्तित्ववाद प्रस्तुत है ।***

अध्ययन, समाधान तक पहुँचने के पहले तृप्ति बिन्दु मिलता नहीं है । अतृप्ति स्वयं पुनः शोध का कारण बना । इससे यह पता चलता है शोध के अनन्तर शोध, गम्य स्थली तक पहुँच सके । अतएव निष्कर्ष यही है जनचर्चा अथवा संवाद, विमर्श, विश्लेषण, विवेचनाएँ, समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तिव से सूत्रित होने से ही है इसे सार्थक रूप पहचान करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत है ।

जनचर्चा में मानवीयता पूर्ण योजनाओं की स्वीकृतियाँ :

जागृतिपूर्ण मानव मानवीयता पूर्ण पद्धति से ही योजना, कार्ययोजना और व्यवहार योजना को सार्थक बना पाता है । सार्थकता का मूल बिन्दु अर्थात मूल स्वरूप मानवीय व्यवस्था में भागीदारी करना ही है । मानवीय व्यवस्था अपने मे स्वराज्य व्यवस्था ही है जिसकी आवश्यकता सदा से बनी है । मानव अपने मे जागृति के क्रम मे ही ज्यादा देर लगाया है । जागृति क्रम मे असंतुष्टि हर मंजिल में प्राप्त होने के आधार पर जागृति अविश्यंभावी हो गई है ।

> ***भ्रमित रहने तक स्वयं अव्यवस्थित रहता है अन्य से व्यवस्था की अपेक्षा करता है । स्वयं समस्या को प्रसवित कर देता है अन्य से समाधान चाहता है यही भ्रम कहलाता है । भ्रमवश मानव परेशान होता है परेशानियों से मुक्त होने की अपेक्षा हर समस्याग्रस्त मानव में निहित है । इन्हीं आधारों पर जागृति अवश्यंभावी हो गई है ।***

जागृति पूर्वक ही मानव मानवीय व्यवस्था को अपनाया करता है अन्यथा भ्रमित रहता है । भ्रमित रहने तक स्वयं अव्यवस्थित

नौटंकी, मंचन, कला, प्रदर्शन आज की ही विधि में टी.वी. फिल्म इन सभी विधा में आदमी व्यापार से जुड़कर बहुत कुछ प्रस्तुत किया है। उक्त प्रयासो से जितने भी माध्यमो से प्रस्तुत हुआ। यह सब का सब सर्वाधिक रूप में अपराध और श्रृंगारिकता के रूप में प्रस्तुत हुआ है। श्रृंगारिकता भोग उन्माद के अर्थ में मानव के सम्मुख पेश है मानव जाति में इस इक्कीसवीं सदी के पहले वर्ष तक सर्वाधिक लोग इसके दीवाने होते हुए देखे गये। इसका मतलब हम मानव की सर्वाधिक मानसिकता भोग उन्माद में ही लिप्त रहना पाया गया है। इसके लिए संग्रह सुविधा का उत्पादन शनैः शनैः बढ़ गया इसके बावजूद कहीं ठौर नहीं मिल पाया। इस बीच मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद प्रेरणा देने में प्रस्तुत हो गई। हर नर-नारी अपनी प्रतिभा को स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी में संगीत और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलम्बन, व्यवहार में सामाजिक होने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। मानव अपने लक्ष्य को पहचानने की विधि और उसके सार्थक बनाने की सम्पूर्ण विधियों को प्रस्तावित किया है। इससे हम अच्छी तरह से लक्ष्य तक पहुँच ही सकते है। जो छः प्रकार की महिमा मानव को लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है। आगे जितने भी प्रदर्शन माध्यमों से मानव कुल के हित में प्रस्तुत होता है उसका आधार मानव महिमा ही होना आवश्यक है।

मानव महिमा को जितना ज्यादा हम चित्रित कर पायेंगे कला और साहित्य का अपने आप में लक्ष्य तक पहुँचने की विधि को स्पष्ट करना पाया जाता है। अतएव जनचर्चा में इस बात की एक अच्छी विचारणा आवश्यक है। कामोन्माद भोगोन्माद के लिए चर्चा को अर्पित किया जाये या समाधान समृद्धि के लिए अर्पित

किया जाये। इस तर्क विधि से समाधान समृद्धि के लिए तर्क विधि सार्थक होना स्पष्ट हो जाता है।

मानव महिमा के छः प्रकार सहज स्वरूपो को स्पष्ट किया है। यह हर मानव को स्वीकार होता ही है। इसे हमे जीने की विधि तक प्रमाणित होने तक एक सुगम संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, संगीत, कविता प्रसंगो में अच्छी तरह से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। यह अभिव्यक्ति अर्थात व्यवहारात्मक जनवाद में किया गया अभिव्यक्ति सभी सकारात्मक मुद्दो की ओर ध्यान आकर्षण कराने का प्रयास है। सकारात्मकता सहज रूप में मानव को स्वीकार होता ही है। उसके साथ लक्ष्य, लक्ष्य के साथ दिशा, दिशा में गति पाने का कार्यक्रम शेष रह जाता है इसे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद स्पष्ट करने का प्रयास किया है इसे हर नर-नारी पूरा अध्ययन कर जाँच सकते है। अभी प्रस्तुत मुद्दा विनोद के अर्थ में सम्पूर्ण साहित्य और कला को प्रस्तुत करने की कोशिश हुई है। इसके स्थान पर सार्थक विधि को अपनाना अति आवश्यक है।

जनचर्चा में इस बात की एक अच्छी विचारणा आवश्यक है। कामोन्माद भोगोन्माद के लिए चर्चा को अर्पित किया जाये या समाधान समृद्धि के लिए अर्पित किया जाये। इस तर्क विधि से समाधान समृद्धि के लिए तर्क विधि सार्थक होना स्पष्ट हो जाता है।

विनोद अपने स्वरूप में विनयपूर्वक स्वीकृति विधि से प्रसन्नता पूर्वक की गयी प्रस्तुतियाँ हैं। मानव के प्रसन्न मुद्रा, भंगिमा, अथवा अंगहार सहित प्रस्तुत होने पर जितने भी देखने वाले होते हैं उनमें भी प्रसन्नता की उमंग

है । स्पष्टता की आकांक्षा सदा सदा से बनी हुई है । यही मुख्य मुद्दा है । इसमें स्पष्ट होना है, नहीं होना है पूछने पर स्पष्ट होने के पक्ष में मानव तैयार होता है पहले स्पष्ट न होने के कारणों पर ध्यान देना आवश्यक है । इस मुद्दे पर सुस्पष्ट स्पष्टीकरण है भौतिकवादी विधि से मानव सुविधा-संग्रह के चक्कर में पड़कर व्यक्तिवादी हो गया, दूसरा आदर्शवादी विधि से भक्ति-विरक्ति में समर्पित होकर व्यक्विादी हो गया दोनों विधि से परिवार, समाज व्यवस्था और व्यवहार का तालमेल स्वरूप निष्पन्न नहीं हो पाई । इसलिए आगे शोध करने के लिए प्रयत्न किये । शोध से यही स्पष्ट हुआ मानव समझदार हो सकते हैं इसके लिए अध्ययन विधि ही पर्याप्त है । अध्ययन विधि से जो स्वीकृतियाँ हुई रहती है बोध रूप में उसे प्रमाणित करने की प्रवृति स्वयं स्फूर्त होती है । फलस्वरूप हर मानव जागृत हो जाता है । जागृत होने के प्रमाण में ही स्वभाव गति प्रतिष्ठा मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित हो जाती है । इस विधि से मानवीय संस्कृति सभ्यता विधि व्यवस्था में ज्ञान विज्ञान विवेक का संगीतीकरण होना प्रमाणित होता है ।

प्रस्तावित मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद से जागृति पूर्वक जीना सहज हो जाता है । इसलिए परिवार व्यवस्था में जीना बन जाता है इसकी आवश्यकता हर मानव को स्वीकार है ही । इसलिए यह एक आवश्यकता है । अखण्ड समाज में भागीदारी-समझदारी पूर्वक सम्पन्न होना स्वीकार होता है ।

मूल्यांकन पूर्वक ही हर मानव आगे के कार्यक्रम को सुनिश्चित करता है । सार्थक बिन्दुएँ वर्तमान में स्पष्ट होते हैं । निरर्थक बिन्दुएँ समीक्षित होकर विगत हो जाते हैं । जो विगत हो गये वे सब वर्तमान

में जो परिपूर्णता के रूप में प्रमाणित होना होता है उसमें विलय हो जाते है । जैसे सम्पूर्ण गलतियाँ समाधान में विलय होते हैं । इसी प्रकार से सार्थकता में असार्थकता विलय हो जाते हैं । यही समीक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

जनचर्चा में अभय समाधान की पुष्टि और इसकी आवश्यकता :

भय मुक्ति की अभिलाषा मानव कुल में सदा सदा से रहा है । इसे ऐसे परीक्षण किया जा सकता है हर आयु वर्ग का आदमी भय नहीं स्वीकारता है चाहे शिशु हो, चाहे कौमार्य हो, चाहे नर हो, चाहे नारी हो, सबको भय मुक्ति चाहिये । यह भी साथ में देखा गया कि दूसरे को सब भयभीत कराते भी है । इस विधि से मानव कुछ असमंजस सा दिखाई पड़ता है । असमंजसता का मतलब यही है स्वयं चाहता न हो दूसरे के लिए तैयार कर प्रस्तुत कर देता है जैसे सामरिक तंत्र और द्रव्य । कोई देश अपने देश के सुरक्षा कर्मियों पर इसका प्रयोग नहीं चाहता पर इसे तैयार करके दूसरे को बेच देते है यही असमंजसता है । इसी प्रकार से कोई सज्जन मिलावट का चीज खाना नहीं चाहते किन्तु मिलावट कर बेच देते हैं । असमंजसता यही है । प्रदूषण को कोई मानव झेल

असमंजसता का मतलब यही है स्वयं चाहता न हो दूसरे के लिए तैयार कर प्रस्तुत कर देता है । जैसे सामरिक तंत्र और द्रव्य । कोई देश अपने देश के सुरक्षा कर्मियो पर इसका प्रयोग नहीं चाहता पर इसे तैयार करके दूसरे को बेच देते है यही असमंजसता है । इसी प्रकार से कोई सज्जन मिलावट का चीज खाना नहीं चाहते किन्तु मिलावट कर बेच देते हैं ।